* श्रीमते रामानुजाय नमः *

श्रीरामानुजाब्द ९७६

नवम्बर १९९२

अनन्त सन्देश

लोकाभिरामं रणरंगधीरं, राजीव नेत्रं रघुवंशनाथम् ।
कारुण्यरूपं करुणाकरन्तं, श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥

वर्ष—२१ मासिक प्रकाशन अंक— ६

श्रीवेङ्कटेश देवस्थान ८०/८४ फणसवाड़ी, बम्बई २

※ विषयानुक्रमणिका ※

नोट – पत्रिका के पाठकों को इस अंक में श्रीभाष्य पढ़ने को नहीं मिल पा रहा है। इसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं, प्रेस के कर्मचारी अचानक सरकारी वोटर लिस्ट कम्पोज करने अन्य प्रान्तों में चले गये हैं। अतः श्रीभाष्य आगामी अंक में दिया जायेगा।

सम्पादक मण्डल

वार्षिक भेंट		साधारण प्रति
भारत में २०)	कर्म हमारा जीवन है ।	भारत में
आजीवन २०१)	धर्म हमारा प्राण है ।।	३-५०) रु०

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

अनन्त सन्देश

मासिक प्रकाशन

अनन्ताचार्यवर्याणामनन्ताऽद्भुतभावदः जीयादनन्तसन्देशः सदनन्तप्रभावतः ।

ईशानां जगतोऽस्य वेङ्कटपतेर्विष्णोः परां प्रेयसीं, तद्वक्षःस्थलनित्यवासरसिकां तत्क्षान्तिसम्वर्धिनी ।
पद्मालंकृतपाणिपल्लवयुगां पद्मासनस्थां श्रियं, वात्सल्यादिगुणोज्ज्वलां भगवतीं वन्दे जगन्मातरम् ॥

वर्ष २१ सम्वत् २०४९ कार्तिक] श्रीधाम वृन्दावन [नवम्बर १९९२ अङ्क—९

चतुःश्लोकी भागवत

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् । सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः । तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् । पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥

ऋतेऽर्थे यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि । तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥

यथामहान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥

[श्रीमद्भागवत २।९।३०-३५]

सम्पादकीय

परमसात्विक पारमहंसी संहिता श्रीमद्भागवत महापुराण में चतु:श्लोकी श्रीमद्भागवत का वीज रूप से उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण है। भागवतीया कथा षट् संवादिया प्रसिद्ध है। इस कथा का मूल स्रोत भगवान् ही हैं। नारायग ने कृपा करके पितामह ब्रह्माजी को इसका उपदेश प्रदान किया। ब्रह्माजी ने देवर्षि नारदजी को, देवर्षि नारद ने महर्षि पराशरनन्दन व्यासजी को और व्यासजी ने भगवान् शुकदेवजी को तथा श्रीशुकदेवजी ने इस परम गोपनीय ज्ञान को राजा परीक्षित को श्रवण कराया। 'एवं नारायण ब्रह्मणें प्राह, ब्रह्मा नारदाय, नारदो व्यासाय, व्यासो मह्यम्, अहं तु तुभ्यमाख्यास्ये, इति भागवतीया कथा षट् संवादीया प्रसिद्धा।'

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध, नवम अध्याय के तीसवें श्लोक श्रीभगवानुवाच—'ज्ञानं परमगुह्यं मे' से इस चतु:श्लोकी श्रीमद्भागवत का प्रारम्भ होता है।

श्रीब्रह्माजी ने भगवान् से प्रार्थना की हे ईश ! आपसे मेरी प्रार्थना है कि जब तक मैं उत्तम मध्यम भेद से इस जगत की सृष्टि कर्म में स्थित रहूँ: मुझे स्वतन्त्र, अजन्मा मानकर होने वाला समुन्नद्ध मद न हो।

भगवान् बोले—मेरा परम गोपनीय विज्ञान सहित जो ज्ञान है, उसे रहस्य और उसके अंग हैं, उनको ग्रहण कर मैं कहता हूँ। उक्त प्रकार से ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थित भगवान् उस ब्रह्माजी पर अनुग्रह करते हुये अपने पर और अवर रूप को प्रकाशित करने वाले चतुश्लोक्यात्मक भागवत को कहा। ज्ञान से तात्पर्य है प्रधान रूप से जानने

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्

योग्य भगवत्स्वरूप विषयक ज्ञान और उसका अंग अर्थात् अप्रधान रूप से जानने योग्य चित् = चैतन्य और अचित् अर्थात् जड़ प्रकृति का स्वरूप विषयक जो ज्ञान मेरे द्वारा कहा है, उसे मुझसे ग्रहण कर। प्रथम तो वह ज्ञान कैसा है, कि रूप है। तब कहा कि परमगुह्यं है; अत्यन्त गोपनीय है, और वह ज्ञान विज्ञान अनुभवात्मक ज्ञान, विज्ञायतेऽनेनेति अर्थात् जिससे जाना जाय, वह है शास्त्र और योग इन दोनों के सहित, सरहस्यं से तात्पर्य है समन्त्रकं मन्त्र के सहित ज्ञान को मैं कहता हूँ, तुम (ब्रह्माजी) ग्रहण करो। यहाँ अर्थ पञ्चक ज्ञान की ओर संकेत है। अर्थ पंचक में स्वस्वरूप (परमात्मस्वरूप) परस्वरूप (जीवात्मस्वरूप) उपाय स्वरूप, फलस्वरूप और विरोधी स्वरूप। इनका ज्ञान ही विज्ञान समन्वित ज्ञान से तात्पर्य है। वह मन्त्र के सहित भी हो। उसे ग्रहण कर।

कहीं ऐसा मत सोचना कि मेरे द्वारा कहे हुये ज्ञान को सम्पूर्ण रूप से ग्रहण कर लेने से मैं स्वयं प्रभु हो जाऊँगा। इस शंका का निवारण करते हुये भगवान् स्वयं कहते हैं—यावानहं, मैं परब्रह्म सत्य स्वरूप हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ और सर्वज्ञ हूँ, मैं भूत, भविष्य, वर्तमान की सारी बातों को जानने वाला हूँ अर्थात् मैं परमात्मा ज्ञान स्वरूप हूँ और ज्ञान गुणक भी हूँ ऐसा मैं यावान् अर्थात् यत् परिमाणक: अर्थात् मैं जिस परिमाण वाला हूँ, मैं परिमाण में बँधने वाला नहीं हूँ, अपरिछिन्न हूँ, जैसे भाव अर्थात् स्वभाव वाला हूँ। मेरा स्वभाव सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण बल और सम्पूर्ण क्रिया से युक्त है, सर्वज्ञादि गुण से युक्त है। 'यद्रूपगुणकर्मक:, मेरा जैसा रूप है अर्थात् जड चेतनात्मक वस्तु सब

मेरा ही रूप है, उन चेतन और अचेतनों के जो गुण सद्धारक भगवद् गुण, जगद् व्यापारं अर्थात् जितने रूप, गुण और कर्म हैं वे सब परमात्मा के हैं, उस प्रकार का तत्व वस्तु का विज्ञान, मेरे स्वरूप रूप गुण और विभूतियों की जैसी आत्मा=स्वरूप वैसा सम्पूर्ण यथार्थ विज्ञान तत्वज्ञान मेरे अनुग्रह रूप कृपा से तुझे ब्रह्माजी को हो।

यावान् की व्याख्या करके फिर से बताते है—प्रधान रूप से ज्ञातव्य=जानने योग्य भगवत् स्वरूप ही हैं। वह चित्=चेतन अचिद्=जड अर्थात् सदसत् से परे विलक्षण जो वस्तु थी वह मैं ही था। परिदृश्यमान सब कुछ चिद् अचिद् से विलक्षण नहीं है, उसी के अन्तर्गत है केवल मैं (परमात्मा) ही उससे विलक्षण हूँ। कैसे विलक्षण हूँ। इसे बताते है—सृष्टि से पहले सृष्टिकाल में और सृष्टि के बाद मैं ही था और हूँ। इसका तात्पर्य है कि सूक्ष्म चिद्चित् विशिष्ट कारण रूप और स्थूल अर्थात् नाम रूप विभाग योग्य चिदचित् विशिष्ट कार्यरूप सृष्टि के समय और बाद में संहार काल में जो अवशेष रहता है, सूक्ष्म चिदचित् विशिष्ट ब्रह्म वह भी मैं ही अवशेष रहता हूँ। प्रकृति पुरुष से विलक्षण और प्रकृति पुरुष शरीरक मैं अकेला ही जो कि सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान्, सबका ईश्वर=स्वामी नियामक हूँ, सृष्टि से पहले अविभक्त नामरूप सूक्ष्म प्रकृति पुरुष शरीरक और सृष्टि करते समय विभक्त नाम रूप प्रकृति पुरुष शरीरक मैं ही था और संहार काल में संहार का विषय भी मैं ही हूँ।

इस प्रकार चिदचिद् से विलक्षण अर्थात् जीवात्मा और प्रकृति (जड पदार्थ) से विलक्षण परमात्मा स्वरूप संक्षेप से बताया। अब अवर शब्द से कहा गया और ईश्वर का अंग रूप से जानने योग्य आत्मा के रूप को कहते हैं अर्थ निरतिशय पुरुषार्थ भूत चित् तत्व के बिना जो वस्तु प्रतीत हो अर्थात प्रकृति के अनुसन्धान के समय आत्मा का स्वरूप ठीक-ठीक प्रकाशित नहीं हो पाता। जब आत्मस्वरूप प्रतीत होता है तब 'सा निशा पश्यतो मुनेः' इस गीतोक्ति के अनुसार अचेतन प्रतीत नहीं होता वह परमात्मा की माया जानो। एक के प्रकाश में अन्य एक का प्रकाश में न आना विरुद्ध प्रतीत होता है, इसे दृष्टान्त से समझाते हैं'---यथाऽऽभासो यथा तमः' तेज के समक्ष तम=अन्धकार का अस्तित्व नहीं और नहीं अंधकार में तेज भासता है वैसे ही स्थूलता और सूक्ष्मता नित्यत्व और जडत्व आदि परस्पर विरुद्ध हैं किन्तु इन विरुद्ध आकारां का योग परमात्मा में है।

अर्थ के बिना भी जो प्रतीत हो और अपने स्वरूप में होकर भी जो प्रतीत न हो उसे मेरी माया जानो। जैसे आभास और तम। आभास का अर्थ है प्रतीत होना जैसे आँख पर अंगुली रखकर देखने से दीपक या अन्य कोई वस्तु दो दीखती हैं उसे आभास कहा जाता है। वह न होकर भी प्रतीत होने का दृष्टान्त तम अर्थात् राहु। राहु अन्य ग्रहों के समान आकाश में घूमता है, पर नहीं है, यह स्वरूपमें होकर न दीखने का दृष्टान्त है।

परमात्मा रूप तत्व वस्तु के जानने वालों को इतना ही जानना चाहिये कि अन्वय व्यतिरेक से जो सर्वदा सर्वत्र है वह परमात्मा है। संसार में जितनी जड चेतनात्मक वस्तु हैं वे सब परमात्मा की सता से हैं, यही अन्वय है। जिसमें परमात्मा की सत्ता नहीं है, वह नहीं है यह व्यतिरेक है। हे ब्रह्मन्! तुम इस सैद्धान्तिक मत को परम एकाग्र चित्त रूप समाधि से अनुष्ठान करो तुम्हें सृष्टि या प्रलय काल में कभी मोह न सता पायेगा।

इन ३१ से ३४ तक की चतुःश्लोकी भागवत में सम्पूर्ण बीज रूप से भागवत का प्रतिपाद्य विषय—अर्थ पंचक, तत्वत्रय और मूलमंत्र की विस्तार से व्याख्या निहित है। इसी का विस्तार महर्षि कृष्ण-द्वैपायन व्यासजी ने किया है। यही परमगुह्य ज्ञान हैं। इति शम्।

विनीत—
पं० केशवदेव शास्त्री

तिरुनाङ्गूर में प्रतिष्ठामहोत्सव सम्पन्न

श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के दिव्य सूरियों से (आल्वार) मङ्गलाशासन प्राप्त १०८ दिव्यदेशों में श्री परकाल सूरि से मंगलाशासन प्राप्त तिरुनाङ्गूर ११ दिव्यदेशों के अन्तर्गत श्रीवैकुन्दविण्णगरम् (श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान्) मन्दिर के परिसर में श्रीमदाद्य प्रतिवादि भयङ्कराचार्य जी के दिव्य मङ्गल विग्रह का प्रतिष्ठामहोत्सव भा. शु-३ ता ३०-८ ९२ रविवार के दिन सम्पन्न हुआ। तिरुनाङ्गूर वैकुन्दविण्णगरम् तिरुमालिगै शाखा के आचार्य श्रीमदुभय वेदान्त विद्वान् प्र. भ. कृ. श्रीनिवासाचार्य जो प्रसिद्ध विद्वान विद्याभूषण प्र. भ. अण्णंगराचार्य, जो श्रीरंग मन्दिर वृन्दावन के आस्थान विद्वान् थे, के छोटे भाई हैं ने इस का सम्पादन किया। पुष्करराज में स्थापित प्र. भ. गद्दी में आद्य अनन्ताचार्य जी के बाद अभिषिक्त श्री श्री निवासाचार्य, इसी शाखा के हैं। ऐसे तो यह मन्दिर व विग्रह प्राचीन ही हैं। बीच में जीर्ण शीर्ण होकर अब इस का पुनरुद्धरण हुआ हैं। इसके महोत्सव में श्री काच्ची प्र० भ० मठाधीश जगद्गुरु गादि श्रीनिवासाचार्य जी महाराज श्री काच्ची, प्र० भ० नरसिंहचार्य, श्रीकाच्ची प्र० भ० राजहंसाचार्य, (श्री काच्ची प्र० भ० अण्णंगराचार्य के पौत्र) और स्थानीय श्री प्र० भ० वंशज, बंगलोर से प्र० भ० कृष्णस्वामी अय्यंगार के नेतृत्व में, वहां बसे हुए, २५-३० प्र०भ० वंशजों, इसी शाखा के शिष्य वर्ग अन्यान्य विद्वान, अध्यापक आदि श्रीवैष्णव प्रतिष्ठा महोत्सव में शामिल हुये। वेद, दिव्यप्रबन्ध पाठ हुए। महोत्सव के सम्पादक श्रीनिवासाचार्य, प्र०भ० राजहंसाचार्य अक्कारक्कनि. ति. अ. अनन्ताल्वार स्वामी, श्री विल्लिपुत्तूर विञ्जिमूर श्रीनिवासाचार्य, तिरुनोरमलै गोमठं श्रीनिवासाचार्य के प्रवचन हुए। रातमें वीथा भ्रमण उत्सव हुआ। इस प्रकार प्रतिष्ठामहोत्सव सम्पन्न हुआ।

श्रीमदाद्य प्र. भ. आचार्य का जयन्ती महोत्सव

तिरुमलै तिरुपति देवस्थान से संस्थापित "दिव्यसूरि दिव्यप्रबन्ध योजना संस्था" (आल्वार दिव्यप्रबन्ध प्रोजेक्ट द्वारा तिरुपति श्री अन्नमाचार्य कलामन्दिर के सभांगण में, श्री काच्ची प्र. भ. मठाधीश जगद्गुरु गादि श्रीनिवासाचार्य जी के आध्यक्ष में श्रीमदाद्य प्र० भ० आचार्य का जयन्ती महोत्सव मनाया गया। सभाध्यक्ष के, आचार्य वैभव परक प्रारम्भ भाषण के बाद, कुन्नवाक्कं तिरुमलै अनन्ताप्पिल्लै कृष्णमाचार्य, प्र० भ० आचार्य रचित श्रीवेंकटेश सुप्रभात, स्तोत्र, प्रपत्ति, मंगलाशासन स्तोत्रों के एक एक श्लोक का विशेषार्थ पर श्रीकांची प्र० भ० राजहंसाचार्य, आचार्य चरित्र के माध्यम से, आचार्य प्रभाव पर तेलुगु भाषा में प्रवचन किये। इस योजना के विशेष अधिकारी डा० एम० वरदराजन नें इस सभा का आयोजन सम्पादन किया। यह उत्सव २७-७ ९२, के दिन हुआ।

इसी संस्था के द्वारा श्री काञ्ची में पच्चयप्पा हाई स्कूल के सभाङ्गण में ता ११-८-९२ को श्रीआलवन्दार यामुनाचार्य जी का जयन्ती महोत्सव मनाया गया। कुन्नवाक्कम तिरुमलै अनन्ताप्पिल्लै कृष्णमाचार्य जी के आध्यक्ष में सभा हुई। अक्कारक्कनि तिरुमलै अनन्ताप्पिल्लै अनन्ताल्वान स्वामी का स्तोत्र रत्न के गूढार्थ पर, सम्पत्कुमार स्वामी का आचार्य वैभव पर प्रवचन हुआ। दामोदरन का दिव्यप्रबन्ध गान हुआ।

गतांक से आगे—

सिद्धाश्रम (बक्सर) माहात्म्यम्

अनन्तश्री विभूषित श्रीमज्जगद्गुरु श्रीविष्वक्सेनाचार्य त्रिदण्डी स्वामीजी महाराज, बिहार

अद्मो द्विजान्देवयजीन्निहन्मः कुर्मः पुरं प्रेतनराधिवासम्। धर्मो ह्ययं दाशरथे निजो नो नैवाध्यकारिष्महि वेदवृत्ते ।। धर्मोऽस्ति सत्यं तव राक्षसायमन्यो व्यतिस्ते तु ममापि धर्मः। ब्रह्मद्विषस्ते प्रणिहन्मि येन राजन्यवृत्तिर्धृतकार्मुकेषुः ।। इत्थं प्रवादं युधि संप्रहारं प्रचक्रतू रामनिशाविहारौ। तृणाय मत्वा रघुनन्दनोऽथ बाणेन रक्षः प्रधनान्निरास्थत् ।। जग्मुः प्रसादं द्विजमानसानि द्यौर्वर्षुका पुष्पचयं बभूव। निर्व्याजमिज्या ववृते वचश्च भूयो बभाषे मुनिना कुमारः ।। महीव्यमाना भवतातिमात्रं सुराध्वरघस्मरजित्वरेण। दिवोऽपि वज्रायुधभूषणाया ह्रिणीयते वीरवती न भूमिः ।। बलिर्बबन्धे जलधिर्ममन्थे जह्रेऽमृतं दैत्यकुलं विजिग्ये। कल्पान्तदुःस्था वसुधा तथोहे येनैष भारोऽतिगुरुर्न तस्य ।। (भट्टि० स० २-३४ ३९)

द्विजों को हम सब खाते हैं तथा देवपूजकों को निश्चय करके हम सब मारते और ग्राम को प्रेतनरों का अधिवास हम सब करते हैं। हे दाशरथे राम! यह हम सबों का निज खास धर्म है। बेद के वृक्ष में हम सबों का अधिकार नहीं है। हे मारीच राक्षस! यह पूर्वोक्त तेरा धर्म है यह बात सत्य है परन्तु तुम से दूसरा अन्य मेरा धर्म है जो कि तेरे से विरुद्ध है। धनुष तथा बाण को धारण करने वाला और राजन्यवृत्ति वाला मैं जिससे कि ब्रह्मद्वेषी तुमको मारता हूँ। इस प्रकार संग्राम में वे दोनों रामचन्द्र और मारीच राक्षस आपस नें विवाद तथा प्रहार प्रारम्भ किये। इसके बाद राम ने मारीच राक्षस को तृण के समान मान करके संग्राम भूमि से दूर फेंक दिया। द्विजों का अन्तःकरण प्रसन्न हो गया और आकाश से पुष्प की वृष्टि होने लगी। बिना विघ्न के वह यज्ञ समाप्त होगया तब फिर भी विश्वामित्र महामुनि ने राजकुमार रामचन्द्र से वचन कहा। देवताओं के यज्ञ को विध्वंस करने वाले राक्षसों को विजय करने वाले आपसे अत्यन्त पूजित यह पृथिवी वीर वाली इन्द्र से सुशोभित स्वर्गलोक से भी नहीं लजाती है। जो आपने वामनरूप से बलिराजा को बाँधा तथा विष्णुरूप से समुद्र को मथन किया और मोहिनी स्त्री रूप से अमृत को हर लिया तथा अनेक रूप धारण करके दैत्यकुल पर विजय किया और श्रीवराहरूप से कल्पान्त में दुःस्थ पृथिवी को बिना परिश्रम के वहन किया उस परमेश्वर आपके लिये यह ताडका का वध आदिक काम बड़ा भारी नहीं है।

।। इति वामनाश्रमाहात्म्यं समाप्तम् ।।

अथ वेदगर्भामाहात्म्यम्

सूत उवाच—एकदा नारदः प्राह मार्कण्डेयं महामुनिम्। भगवन्केन तपसा नरो मोक्षमवाप्नुयात् ।। केन दानेन विधिना योगेनाथ महामुने। भगवन् यदि तुष्टोसि कृपया वद मे प्रभो ।।

सूतजी ने कहा कि—नारदमुनि ने एक समय मार्कण्डेय-महामुनि से कहा कि हे भगवन् ! मनुष्य किस तपस्या से मोक्ष को प्राप्त करेगा। हे महामुने ! अथवा किस दान से या किस अनुष्ठान से अथवा किस योग से मोक्ष को प्राप्त करेगा। हे भगवन् ! यदि तुम सन्तुष्ट हो तो हे प्रभो ! कृपा करके तुम मुझसे कहो। वेदगर्भामाहात्म्य ब्रह्माण्ड-पुराण के पूर्वखण्ड में पाँच अध्याय हैं यह अति पुराना पत्र पर हस्तलिखित मुझको प्राप्त हुआ है। इससे भाषा में अनुवाद करके जैसे के तैसे मैं लिखा हूँ। श्रीब्रह्माण्ड महापुराण समस्त मुद्रित नहीं उपलब्ध होता है इससे मुद्रित ब्रह्माण्ड महापुराण में वेदगर्भामाहात्म्य नहीं प्राप्त होता है।

मार्कण्डेय उवाच—लोकेस्मिन्मुनिशार्दूल बेदगर्भा पुरी पुरा। तस्यां पुर्यां महाभाग योगिनो योगमाप्नुयुः ।। कृत्वा कर्म दिवं यान्ति अनन्तमुपतिष्ठते ।।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा कि—हे मुनिशार्दूल ! इस लोक में पुरानी वेदगर्भापुरी (बक्सर) है। हे महाभाग ! तिस पुरी बक्सर में योगी लोग योग को प्राप्त करेंगे। और वैदिक कर्म को करके देव लोक में जाते हैं। तथा अनन्त ब्रह्म प्राप्त होता है।

नारद उवाच—का वैषा नाम या प्रोक्ता वेदगर्भा कथं ह्यभूत् ।।

नारद मुनि ने कहा कि—वेदगर्भापुरी जो कही गई है वह कौन सी है और निश्चय करके कैसे हुई है।

मार्कण्डेय उवाच—माहात्म्यं वेदगर्भाया वक्तु को हि क्षमो भवेत्। यदि वर्षसहस्रेण ब्रह्मा वक्तुं न शक्यते ।। अस्वाकं स्थूलबुद्धीनां का शक्तिर्ब्रुवतां फलम्। लेशमात्रेण वक्ष्यामि साद्‌गुण्यं यच्च तत्र वै ।। यत्र गङ्गा च वग्ला च यत्र चैत्ररथं वनम्। यत्र सोमेश्वरो देबो मुक्तिस्तत्र न संशयः ।।

मार्कण्डेय ने कहा कि वेदगर्भापुरी (बक्सर) के माहात्म्य को कहने के लिये कौन समर्थ होगा। यदि ब्रह्मा हजार वर्ष से कहने के लिये नहीं समर्थ हो सकता है। स्थूल बुद्धि वाले हम सबों के बक्सर माहात्म्य के फल को कहने की क्या शक्ति है तो भी बक्सर में जो सादगुण्य है उसको लेश-मात्र से निश्चय करके मैं कहूँगा। जिस बक्सर में गङ्गा नदी है मौर जहाँ पर वग्ला (रामरेखा) है तथा जहाँ पर चरित्र-वन है और जहा पर सोमेश्वरदेव हैं वहाँ पर मुक्ति होती है इसमें संशय नही है।

नारद उवाच—तपोनिधे मुनिश्रेष्ठ वेदवेदाङ्गपारग। माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि यथातत्त्वं वदस्व मे ।।

नारद मुनि ने कहा कि हे तपोनिधे ! हे मुनिश्रेष्ठ ! हे वेदवेदाङ्ग पारग ! बक्सर के माहात्म्य को सुनने के लिये मैं इच्छा करता हूँ। इससे यथार्थ तुम मुझसे कहो।

मार्कण्डेय उवाच - रामकोटिकृता रेखा वामनाश्रममध्यगा। तस्माद्वग्लेति विख्याता देवानामपि दुर्लभा ।। यथाकोटिसमुद्भूता वग्ला सा मुनिसत्तम। तथाहं च वदिष्यामि यथास्मृतिर्मुनीश्वर ।।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा कि रामचन्द्र के धनुष्कोटि से की गयी रेखा वामनाश्रम के मध्य तक गई हुई है तिससे वग्ला (रामरेखा) ऐसा विख्यात है। यह रामरेखा देवताओं के भी दुर्लभ। हे मुनिसत्तम-नारद ! जैसे राम के धनुष्कोटि से यह रामरेखा उत्पन्न हुई है। हे मुनीश्वर नारद। और जैसा मुझको स्मरण होता है तैसा ही मैं कहूँगा, तुम सुनो।

[क्रमशः]

गतांक ४ से आगे—

श्रीकृष्णचरित-मानस तृतीय सर्ग

व्रज पर्व

—श्रीगोपीनाथ अग्रवाल

ग्वाल बाल देखा जब तेही।
कहें परस्पर सुनहु स्नेही॥
गुफा वहाँ जो परत दिखाई।
अजगर सम लगती है भाई॥
कौतुक बस समीप सब आए।
जीभ देख कोउ कोउ घबराए॥
कोउ कह जीभ नहीं यह भाई।
यह तो चिकनी सड़क है भाई॥
कोउ कह गँध श्वास की आती।
कोउ कह तू डरता बिन बाती॥

दो०--भीतर चल कर देखते चाहे जो हो भाई।
भय नहीं हमको किसी का साथ है कृष्ण कन्हाई॥

अस विचार कर के मन माहिं।
घुसे सकल अजगर मुख माहिं॥
जान रहे थे सब नन्दलाला।
पैठे मुख में स्वयं गोपाला॥
प्रभु का खेल देव घबराए।
असुर खुशी से ताल बजाए॥
मुख पैठत प्रभु वदन बढ़ाया।
सांस न दुष्ट दैत्य ले पाया॥
बाहर तेहि मुख से सब आए।
अजगर मरा देख हर्षाए॥
नभ पर सुर दुन्दुभि बजाएं।
स्तुति करहिं पुष्प बरसाएं॥
जै जै जै जै जयति कृपाला।
दैत्य वंश भक्षक नन्दलाला॥
भक्तन के रक्षक जगदीशा।
जयति जयति जै प्रभु जै ईशा॥

दो०--देव गए निज लोक सब बाल सखा हर्षाए।
बलदाऊ ने कृष्ण को लीन्हा गोद उठाए॥

सभी सखा हरि ओर निहारें।
कृष्ण का जै जै कार उचारें॥
हरि को गोद में लिये उठाए।
नाच गान करते घर आए॥
मात पितहि सब बात बतायो।
जेहि विधि कान्हा उन्हें बचायो॥
सुन सबही ने अचरज माना।
दीन्हे विप्र विविध विधि दाना॥
अति कृतज्ञ कह सब नर नारी।
कान्हा टाली विपत्ति हमारी॥
नन्द यशोदा बलि बलि जाएं।
बार बार हरि हृदय लगाएं॥
एहि विधि प्रभु हरते भुवि भारा।
लीला करते नित्य अपारा॥
मंगल धाम सकल दुख हारी।
करत कृपा प्रभु कृष्ण मुरारी॥

दो०--कदम तले यमुना निकट धारे मुकुट ललाम।
बजा रहे थे वाँसुरी वन में एक दिन श्याम॥

वदन पे लिपटी कमली काली।
काँधे पर लकुटिया निराली॥
कमर काछनी गले में माला।
था प्रभु का शृङ्गार निराला॥

आस पास चरतीं थी गायें ।
तभी वहाँ नारद मुनि आये ॥
बोले धन्य कृपानिधि ईशा ।
लीलाधाम प्रभु जगदीशा ॥
कृपा करहु अस अन्तर्यामी ।
यह छवि बसे हृदय मम स्वामी ॥
वेगि उपाय करहु प्रभु सोई ।
दुखी न रहे धरा पर कोई ॥
बोले कृष्ण सुनहु मुनि नाथा ।
सुख दुख हैं, जीवन के साथा ॥
जो भी इस धरती पर आता ।
सुख दुख दोनों भोग के जाता ॥

दो०-शब्द ये सब सापेक्ष हैं सुख दुख गौर व श्याम ।
एक नहीं तो दूसरा है निरर्थ नाकाम ॥

दुख से ही है सुख की गरिमा ।
बुरे से ही तो भले की महिमा ॥
गर कुरूप जग में नहीं आता ।
रूप प्रशंसा कैसे पाता ॥
ताप से जब व्याकुल हो आते ।
छाया का सुख तब ही पाते ॥
शीत से जब कोई अकुलाता ।
धूप का सुख तब ही तो पाता ॥
जेहि के उर जब जगे विवेका ।
तेहि को दुख सुख लगते एका ॥
उचित दृष्टि जब नर अपनाए ।
दुख में भी वह सुख ही पाए ॥
दृष्टिकोण जो गलत बनाते ।
उनके सुख भी दुख बन जाते ॥
सुख दुख धूप छाँह सम साथा ।
सबके संग रहते मुनि नाथा ॥

दो०--सुन हर्षे देवर्षि तब प्रभु को किया प्रणाम ।
ब्रह्मलोक को चल दिए लेकर हरि का नाम ॥

गूँजी फिर बाँसुरी की ताना ।
सुनि आए सब सखा सुजाना ॥
ऋषभ सुबल अँशो श्रीदामा ।
मनसुखा आदि भाई बलरामा ॥
एक वेश सब एक समाना ।
सभी मस्त सारे बलवाना ॥
इधर श्याम बाँसुरी बजाते ।
उधर सखा सब मिलकर गाते ॥
कह मनसुखा सुनो गोपाला ।
बुरा भूख से अपना हाला ॥
सा रे गा तब लगती खोटी ।
पेट माँगता हो जब रोटी ॥
पहले करलें पेट की पूजा ।
पीछे काम करेंगे दूजा ।
हँसि बोले प्रभु ठीक है भैया ॥
बोले सब जै कृष्ण कन्हैया ॥

दो०--पत्तों की थाली बड़ी लीन्ही एक बनाए ।
जो जो घर से लाए थे उस पर दिया सजाए ॥

सबने एक संग मिल कर खाया ।
साथ ठिठोली कर सुख पाया ॥
कह श्रीदामा समझ न आता ।
गाय को क्यों कहते गौमाता ॥
मानव का पशुओं से ताता ।
कैसा माँ बेटे का नाता ॥
जननी जन्म जो देती भ्राता ।
उसी को माता कहना भ्राता ॥
बोले कृष्ण उचित है ताता ।
वह जननी ही असली माता ॥
स्वयं जाग जो हमें सुलाती ।
खुद भूखी रह हमें खिलाती ॥
उसका ऋण हम पर है भारी ।
वह जननी अति पूज्य हमारी ॥
उसकी सेवा धर्म हमारा ।
तीर्थ धाम है वही हमारा ॥

दो०--जीवन भर सेवा करें नित्य झुकायें सीस ।
तो भी माँ का ऋण नहीं चुका सकें कह ईश ॥

(क्रमशः)

गतांक से आगे—

सहस्रगीति

— श्रीमती सीतादेवी अग्रवाल रामानुजदासी, कलकत्ता

सहस्रगीति के चौथे शतक का तीसरा दशक प्रारम्भ

हमारे आल्वार को जब राम कृष्णरूप अवतार का अनुभव प्राप्त हुआ, तब उन्हें बहुत आनन्द आया, उसी आनन्द के वशीभूत होकर अपना सम्पूर्ण शरीर ही ईश्वर को समर्पण करते हैं। आल्वार कहते हैं—

१—हे प्रभो ! आपने लाल होठों वाली नीला जी को स्वीकार करने के लिये बैलों का मान मर्दन किया था, प्राण प्रिया जानकी जी को स्वीकार करने के लिये रावण का सर्वनाश किया था। अपनी प्यारी मथुरापुरी की रक्षा करने के लिये ही मतवाले हाथी के दाँत तोड़े थे। हे लक्ष्मीपते ! सर्व पाप हरण-कर्त्ता ! आपके चरणों का शुद्ध पुष्प-जल लेकर आराधन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ है, मैं आपकी पूजा करने में अपने को समर्थ नहीं पारहा हूँ, अब मैं अपने मन को ही चन्दन रूप से आपके दिव्य विग्रह की शोभा बढ़ाने के लिये श्रीचरणों में समर्पण करता हूँ।

२—हे प्रभो ! आप तीनों लोकों की रक्षा करने के लिये ही उसको अपने अन्दर समेट लेते हो, फिर बाहर निकालकर आप वैसे ही बसा देते हो और एक सर्व प्रधान विष्णु की मूर्ति धारण करके रहते हो, उन्हीं आपकी पूजा करने के लिये मेरा चित्त ही चन्दन है। मेरी यह वाणी की स्तुति ही पुष्पों की माला है और मेरी यह हजार श्लोकों वाली कविता ही पीताम्बर वस्त्र है, हे लक्ष्मी-पति ! मेरा अञ्जलि बांधना ही आपका दिव्य भूषण है। इस प्रकार मन वचन शरीर से आप ही मेरे परम भोग्य हो।

३—हे प्रभो ! आप एक मूर्ति से ब्रह्मा जी, दो मूर्ति से मनु शतरूपा, तीन मूर्तिरूप में देव, मनुष्य, तिर्यक् रूप धर लेते हो और अनेक रूप से होकर पंच भूत सूर्य चन्द्रादिकों के भीतर भी सूक्ष्म रूप से व्याप्त हो रहे हो। क्षीरसमुद्र में शेष जी पर शयन करने वाले नारायण आप ही हो। आप ही मेरी आत्मा में मिलकर एक रूप होगये हो, अब मेरे समस्त दुःख दूर हो गये हैं।

४—हे हरि ! आपने गोपाल रूप धारण करके विष भरे स्तन पिलाने वाली पूतना को मार कर ब्रज में गायों का पालन किया था। लक्ष्मी के पति होकर भी आपको मांगने के लिये वामन बनना पड़ा, मैं आपके श्रीमुकुट की शोभा बढ़ाने के लिये भूषणरूप यह प्राणों की माला आपको अर्पण करता हूँ।

५—सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले काल के पति श्रीकृष्ण को मैंने अपने प्राणों की माला अर्पण करदी, फिर भी भक्ति ही प्रभु के मस्तक का आभूषण है। उस प्रभु की जो संसार में कीर्ति

है वही उनके योग्य वस्त्र है। प्रभु स्वयं ही दिव्य वस्त्र भूषण युक्त हैं, उनके लिये सच्चे प्रेम के अतिरिक्त हम और अर्पण ही क्या कर सकते हैं।

६—जो हरि काल के अधीश्वर, चक्र शंख से शोभायमान हाथ वाले, प्रलय काल में जगत को खाने वाले आप नारायण रूप होकर सारे जगत की रक्षा करने वाले हो। मैं आपको अनेक प्रकार से बुला बुला कर थक गया, किन्तु आपके दर्शन न मिलने से निराश होगया हूँ।

७- हे प्रभो। आपने चरणों से भूमि और रसातल को नापने के लिये जब वामन रूप धारण किया था, उस समय मैंने तो दुर्भाग्यवश सर्व प्रकार पूजा करने योग्य फल पुष्प जल आदि लेकर पूजा करने की चेष्टा ही नहीं करी। फिर भी वेदों में छिपा हुआ आपका दिव्य विग्रह मेरे मन में अवश्य बसा हुआ है।

८—प्रभो! आप मेरे हृदय में ज्ञान रूपी उज्ज्वल शरीर धारण करके विराजमान होरहे हो, हे प्रभो! मेरा अन्तःकरण तो आपके वश में है और आप मेरे अन्तःकरण में विराजमान हो। इस प्रकार समस्त वस्तुओं की स्थिति देखकर मैं यह नहीं कह सकता कि ईश्वर किसमें है और किसमें नहीं है। आप तो सब जगह हैं भी और नहीं भी हैं,—आपकी लीला आप ही जानते हो।

९—हे नारायण! मैं जब आपके गुणों का कथन भी पूर्ण रूप से नहीं कर सकता तो आपकी कीर्ति रूपी समुद्र का पार कैसे पा सकता हूँ। हे लक्ष्मीपते हे तेजरूप के भण्डार! आपकी भक्त परवशता को विचार कर मैं बहुत ही व्याकुल होगया हूँ। आप तो सर्वेश्वर हो, नित्य मुक्तगण निरालस्य होकर स्तुति किया करते हैं। हे पुरुषोत्तम! मैं बहुत ही अज्ञानी नीच होकर भी आपकी स्तुति करने की चेष्टा कर रहा हूँ, क्या यह आपको सहन होगा।

१०—मैं तुच्छ अकिंचन दास ही अकेला प्रभु की स्तुति करने में लगा हूँ सो नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण लोकवासी भी आप लक्ष्मीपति की स्तुति करने में स्वयं लगे हुये हैं। क्या उस अविनाशी की इस प्रकार से यथार्थ स्तुति हो सकती है, उसकी सर्वाङ्गपूर्ण स्तुति करना तो हमारी शक्ति के बाहर है, फिर भी हम जितनी कर सके वही हमारे लिये दूध, शक्कर, खांड़ से भी मधुर स्वादिष्ट है। अतएव हम लोग अपनी आत्मा के उद्धार के लिये उसकी स्तुति करते हैं।

११—इस संसार में प्राणियों के उद्धार का अन्य कोई उपाय नहीं है ऐसा विचार करके श्रीकृष्ण के चरण-युगल की भक्ति करने के लिये ही कुरुकापुरवासी श्रीशठकोप स्वामी ने स्वयं इस दिव्य गाथा को कहा है, उसमें जो वैष्णवजन इस दशक को पढ़ेंगे वे भूमि के सब एश्वर्य भोग कर भगवान के श्रीचरणों को प्राप्त करेंगे।

॥ इति सहस्रगीति का चौथे शतक का तीसरा दशक समाप्त ॥

चौथा शतक का चौथा दशक प्रारम्भ

१—इस दशक में जब आल्वार सब कुछ प्रभु को समर्पण कर देते हैं तब भगवान सोचते हैं आल्वार तो बहुत आनन्द-विभोर होरहे हैं। कहीं विदेह न होजाय तब अपनी मूर्ति उनके सामने से छिपा लेते हैं। उनके दर्शन न पाने से विरह से दुःखी होकर आल्वार पागल के समान होजाते हैं। और नायिका की माता के रूप में कहने लगते हैं। हाय मेरी पुत्री! यह कहकर भूमि पर लेट जाती

है और आकाश में मेरे स्वामी का वासस्थान है ऐसा कहकर बार बार आकाश की ओर देखती है। वह अपने दोनों हाथ और मुख के इशारे से वैकुण्ठ को देखती है और आसुंओं की धारा बहा कर प्रभु को हे समुद्र-वर्ण कहकर चिल्लाती है। अहो यह मेरी पुत्री पर मोहनी जादू डालकर उसे पागल बनाने वाले हरि को मैं क्या कहूँ। यहाँ पर चेतन ही नायिका हैं, चेतन जीव की बुद्धि ही नायिका की माता है, नायिका भी शठकोप स्वामी ही हैं और बुद्धि रूपी माता भी, स्वामी जी ही अपनी बुद्धि द्वारा भगवान से प्रार्थना करते हैं।

२—अहो यह मेरी पुत्री तो बड़ी शिथिल होगई है, वह दोनों हाथों से अञ्जली बाँध कर समुद्र की ओर इशारा करती है, यह तो मेरे स्वामी के सोने की शय्या हैं। अति तेज वाले सूर्य को बताकर कहती है, यह मेरे स्वामी की मूर्ति है। इस प्रकार से निरन्तर आसुंओं की धारा बहाकर हे नारायण ! हे नारायण ! पुकार कर मूर्छित जैसे हो जाती है। हाय, मैं इसे कैसे समझाऊँ।

३—अहो, यह मेरी पुत्री जलती हुई अग्नि को देखकर कहती है यही मेरा अविनाशी स्वामी है और बड़े प्रेम से आलिंगन करती है किन्तु जलती नहीं, यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात है। यह शीतल पवन को देखभर उससे छाती खोलकर मिलती है। यह मेरा स्वामी गोविन्द है, तभी तो इसमें तुलसी की सुगन्ध आरही है। माता कहती है, हाय मुझ पापिनी को इसका पूरा पता भी नहीं लगता कि पागलपन में आकर न जाने क्या क्या कहती रहती है। ऐसा जान पड़ता है कि आल्वार को भगवत् मन्त्र की पूर्ण सिद्धि प्राप्त होगई है।

४—यह मेरी पुत्री चन्द्रमा को देखकर कहती है, ये मणि-वर्ण भगवान है। पर्वत को देखकर कहती है यह विशालकाय मेरा प्राणनाथ ही है और उसे बुलाती है। बरसते हुये बादल को देखकर समझती है मेरे ऊपर पीयूष की वर्षा करने वाले नारायण आये हैं। ऐसा कहकर नाचने लगती है, हाय, इसे आज किसने पागल कर दिया है। पर्वत को ही त्रिविक्रम भगवान समझना, मेघों को श्याम सुन्दर समझना इस प्रकार का व्यामोह इस प्राण प्यारी पुत्री का बढ़ाता ही जाता है। इसको मैं कैसे सुधारुँ।

५—यह तरुण बछड़ों को देखकर उनको पकड़ने को दौड़ती है, सोचती है इन प्यारे बछड़ों को गोविन्द ने ही चराया था, यह बछड़े आये हैं इनके पीछे इनको चराता हुआ गोविन्द भी आयेगा इसीलिये इनको पकड़ती हैं। सर्प को देखकर उसके पीछे दौड़ती है, कहती है-यह तो मेरे चित्त-चोर की शय्या है, यह मेरे प्रभु के पास ही जारहा है इसके पीछे जाने से मुझे मेरे स्वामी मिल जायेंगे। उस मायावी ने तो मेरी कोमलांगी पुत्री पर जादू कर दिया है। न जाने इस बच्ची के साथ क्या क्या नाटक करता रहता है। मेरे को पता भी नहीं।

६—जब नट लोग मस्तक पर कुम्भ धारण करके नृत्य करते हैं तो उनको श्रीकृष्ण समझकर उनके पास जाती है। सोचती है यह मेरे कृष्ण ही तो कुम्भ नृत्य नहीं कर रहा हैं। जो उर्ध्व-पुण्ड्र तिलक धारण करते हैं उन्हें ईश्वर भक्त जानकर उनके पीछे होजाती है, सुगन्धित तुलसी पुष्पों को देखकर प्रभु की माला जानकर अपने मस्तक पर रखती है, इस प्रकार यह मेरी पुत्री ज्ञान अज्ञान दोनों ही अवस्था में उस मायावी के वश में होगई है।

७—यह मेरी पुत्री मोह को प्राप्त होकर कहती है यह, सारा विश्व मेरे कृष्ण ने रचा है,

उत्तम वेणु का शब्द सुनकर बड़ी व्याकुल होती है, यह वही मायावी कृष्ण है। गोपियों का माखन देखकर कहती है इसे ही मेरे कृष्ण ने खाया है। जो विष की बहन लक्ष्मी का पति है, वह न जाने इस कोमलांगी मेरी पुत्री के साथ ऐसा बर्ताव क्यों कर रहा है इसे अपने वियोग में क्यों सता रहा है।

८—जब वस्त्र भूषण से अलंकृत राजाओं को देखती है तब कहती है, यह लक्ष्मीपति हैं, संसारी लोग धनवान को ही लक्ष्मीपति कहते हैं यह सोचकर ही कहती है मैंने लक्ष्मीपति के दर्शन कर लिये हैं। यह मेरी पुत्री भयभीत होकर बेहशी की हालत में भी श्रीकृष्ण के चरणों में आसक्त होरही है, उसीमें इसका मन रम गया है।

९—यह सब संसार को त्यागे हुये परम भागवत जो भगवत शरण होगये हैं उनको, देखती है तो कहती है। अतिविशाल संसारकी रक्षा करने वाले भगवान विष्णु ये ही हैं। नील मेघों को कृष्ण का स्वरूप समझकर उनको पकड़ने के लिये ऊपर को उछलती है। गोओं को देखने लगती है। सोचती है, गोपाल इनके पीछे आरहा होगा, इस प्रकार मेरी भोली बच्ची को उस मायावी नें मोह लिया है।

१०—यह उस प्रभु के समान आकार वाले पदार्थों को देखकर कहती है देखो मेरे प्राणनाथ आते हैं। ऐसा कहकर बहुत दूर तक दौड़ती है। कभी कभी लम्बे लम्बे सांस लेती हुई घबराती हुई हरि को बुलाती है। हे कृष्ण आओ, अब जल्दी आजाओ, इस दासी को दरश दिखादो। ऐसा कहकर बार बार पुकारती है। प्रभु के प्रेम मे मदमाती हुई यह मेरी पुत्री हर समय क्या करती है। आश्रितों के पापों को नाश करने वाले श्रीकृष्ण की स्तुति करने के लिये पाप रहित शठकोप मुनि ने जगत का कल्याण करने के लिये ही यह सहस्रगाथा को इतने सुन्दर छन्दों में बनाकर कहा है। जो भक्तगण इन दिव्य दस श्लोकों को पढ़ेंगे, वे समस्त पापों से छूटकर सर्वश्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त होंगे।

॥ इति सहस्रगाथा चतुर्थ शतक का चौथा दशक समाप्त ॥

आत्म-चिन्तन

स्वार्थ सिद्धि करने में हम भूल जाते हैं परमार्थ को, जब कि परिणाम होता है यह कि आजीवन स्वार्थ भी सिद्ध नहीं हो पाता--परमार्थ का तो कोई प्रश्न ही नहीं।

विचार-दृष्टि से देखा जाये तो सब स्वार्थों के पीछे मुख्य स्वार्थ मानव का एक ही है--आनन्द प्राप्ति। परमार्थ से विमुख--स्वार्थी जीवन क्या आज तक पूर्ण आनन्द की प्राप्ति कर पाया? सम्भव ही नहीं।

आजीवन मनुष्य यही सोचता रहता है कि अमुक वस्तु की प्राप्ति कर लूँ, अमुक का उपभोग कर लूँ, तब तृप्त होजाऊँगा। पढ़ाई, कमाई, शादी, सन्तानोत्पत्ति, मान-प्रतिष्ठा और भी न जाने क्या-क्या धुन सवार रहती है इस पर! बेचारा मानव! सब करने पर भी हाथ क्या लगा--केवल हाथ मलना ही।

गतांक से आगे—

महाभारतामृतम्

श्रीमद् भगवद्गीता अठारवाँ अध्याय

✲

जो 'ज्ञान' प्रेत भूतादि की आराधनारूप एक कार्य में अत्यन्त तुच्छ फल देने वाले किसी एक कर्तव्य कर्म में यही पूर्ण फल देने वाला है इस प्रकार से आसक्त हो जाता है, तथा वास्तव में वह कर्म पूर्ण फल वालान होने के कारण वैसी आसक्ति के हेतुसेरहित है,एव जो पहले की भाँति हीआत्मा में पृथकता आदि भावों से युक्त होने के कारण यथार्थ तत्व से रहितमिथ्या अर्थको विषय करने वाला और अल्प है अर्थात् जो प्रेतादि की आराधनाके विषय का ज्ञान होने से अत्यन्त तुच्छ फल देने वाला है, ऐसे ज्ञान को तामस कहा जाता है। कर्तव्य कर्म विषयक ज्ञान के अधिकारी की भावना के अनुसार गुणों के कारण होने वाले तीन प्रकार के भेद बतलाकर अब किये जाने वाले कर्म के गुणों के द्वारा होने वाले तीन भेद बतलाते हैं—जो कर्म अपने वर्णाश्रम के अनुकूल शास्त्रविहित हो, कर्तापन के सम्बन्ध से रहित हो,बिना रागद्वेष के किया गया हो.अर्थात् कीर्ति में राग अकीर्ति में द्वेष से न किया हो,बिना दम्भके कियागया हो तथा फल की आकांक्षा से रहित पुरुष के द्वाराकर्तव्य समझकर किया गया हो, वह सात्विक कर्म कहलाता है। जो कर्म अत्यन्त प्रयास से युक्त फल की आकांक्षा से और अहंकार से युक्त पुरुष के द्वारा अर्थात् कर्तापन के अभिमान (यह कर्म मुझ से ही किया जा सकताहै) वाले पुरुष से किया जाताहै, वह राजस कर्महै कर्म करने के बाद होने वाले दुःख को अनुबन्ध, कर्म करने से होने वाला धननाश-क्षय, कर्म में प्राणियों को पीड़ा पहुंचना हिंसा,कर्म को पूर्ण करने के अपने सामर्थ्य को पौरुष कहा जाता है। जो कर्म इन सबका विचार न करके मोह पूर्वक यानी परमपुरुष ही सब कर्मों का कर्ता है—इस तत्व को समझे बिना आरम्भ किया जाता है, वह तामस कहलाता है। जो कर्ता मुक्तसङ्ग=फलासक्ति से रहित है, अनहंवादी=कर्तापन के अभिमान से रहित है तथा धृति=आरम्भ किये कर्म के पूरे होने तक आने वाले अनिवार्य दुःखों को सहन करने को धृति कहा जाता है. और चित्त में सर्वदा स्फूर्ति रहने का नाम उत्साह है। जो कर्ता इन दोनों गुणों से भी युक्त है एवं युद्धादि कर्म में और उसके सहायक रूप द्रव्योपार्जन आदि कर्मों में होने वाली सिद्धि—असिद्धियों में जिसका चित्त विकृत नहीं होता ऐसा निर्विकारकर्ता सात्विक कहलाता है। जो कर्ता रागी=यश चाहनेवाला, कर्म के फल की आकाङ्क्षा रखने वाला लोभी=कर्म की सफलता के लिये आवश्यक द्रव्य व्यय न करने के स्वभाव वाला, हिंसक=दूसरों को पीड़ा पहुंचाकर उनके साथ कर्म करने वाला, अशुचि=कर्म के लिये आवश्यक पवित्रता से रहित और युद्धादि कर्मों में विजय—पराजयरूप सिद्धि और असिद्धि में होने वाले हर्ष-शोक से युक्त है, ऐसा कर्ता राजस कहलाता है, जो अयुक्त=शास्त्रीय कर्म के अयोग्य पाप कर्मों में नियुक्त, प्राकृत=जिसने विद्या प्राप्त नहीं की है, स्तब्ध=कर्मका आरम्भ न करने के स्वभाववाला शठ=मारण

उच्चाटन आदि कर्मों में रुचिवाला, नैष्कृतिक=धोखा देने वाला, ठगी में लगा, आलसी=आरम्भ किये हुये कर्म में भी बहुत थोड़ा चित्त देने वाला, विषादी=अत्यधिक शोक में डूबा रहने वाला, दीर्घसूत्री=अभिचार आदि कर्म करके दूसरों के लिये बहुत समय तक रहने वाले अनर्थ का विचार करने वाला ऐसा जो कर्ता है वह तामस कहा गया है। इस प्रकार कर्तव्यकर्मविषयकज्ञान, कर्तव्यकर्म, और कर्ता इन तीनों के गुणों के कारण होने वाले तीन तीन भेद बतलाये गये। अब सम्पूर्ण तत्व और समस्त पुरुषार्थ की निश्चयरूपा जो बुद्धि है उसके और धृति के गुणों के कारण होने वाले भेद बतलाते हैं— हे धनंजय! विवेक पूर्ण होने वाले निश्चय रूप ज्ञान को बुद्धि और आरम्भ की हुई क्रिया में विघ्न उपस्थित होने पर उसे सहन करने की शक्ति को धृति कहा जाता है। इनके सत्वादि गुणों से होने वाले तीनों भेदों को मेरे द्वारा पृथक् रूप से सुन। प्रवृत्ति=लौकिक उन्नति के साधनरूप धर्म का नाम है। मोक्ष के साधनरूप धर्म का नाम निवृत्ति है, इन दोनोंको जो बुद्धि ठीक ठीक समझती है। तथा कर्तव्य अकर्तव्य को अर्थात् प्रवृत्तिऔर निवृत्ति इन दोनों में से किसी एक में स्थित हुये सब वर्ण वालों का देश, काल, अवस्था विशेष की अपेक्षा से 'यह कर्तव्य है और यह अकर्तव्य है' इस बात को समझती है, तथा भय और अभयको अर्थात् शास्त्रविरुद्ध आचरण भय का स्थानहै और शास्त्रानुकूल आचरण अभयका स्थान, इसबात को और बन्ध-मोक्ष को अर्थात् संसार के यथार्थ स्वरूप को और उससे छूटने के यथार्थ उपाय को भी ठीक ठीक जानती है, वह बुद्धि सात्विकी है। जिस बुद्धि से मनुष्य पूर्वोक्त दो प्रकार के धर्मों को और उसके विरोधी अधर्म को एवं उस धर्म में परिनिष्ठित लोगों के देश, काल, अवस्था आदि केअनुसार कर्तव्य और अकर्तव्य कोभी ठीक ठीक नहीं जान सकता, वह बुद्धि राजसी है, तमोगुण से ढंकी हुई तामसी बुद्धि तो सब बातों को विपरीत ही मानती है अर्थात् अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म, अच्छी बातको बुरी और बरी बातको अच्छी, परमतत्वकोतुच्छ और तुच्छ को परम-इस प्रकार सब कुछ विपरीत ही मानती हैं। जिस अचल धृति के द्वारा मनुष्य योग के उद्देश्य से प्रवृत्तमन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है, वह धृति सात्विकी है। मोक्षके साधनरूप भगवदुपासना का नाम योग है। अतः जिस अव्यभिचारिणी= अचल धृति के द्वारा फल रूप योग के लिये प्रवृत्त हुई उसकी साधनरूपा मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को मनुष्य धारण करता है वह धृति सात्विकी है हे अर्जुन! फल की आकाङ्क्षा वाला पुरुष जिस धृति के द्वारा अत्यन्त बढ़ी हुई आसक्ति से धर्म, काम और अर्थ को धारण करता है, वह धृति राजसी है। यहाँ धर्म, काम और अर्थ, शब्द से उनकी साधन रूपा मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं की ओर लक्ष्य कराया गया हैं। फलाकाङ्क्षी पद में भी फल शब्द से धर्म, काम और अर्थ ही कहना इष्ट है, क्योंकि यहाँ रजोगुणी का प्रकरण है। अतः धर्म काम और अर्थ के लिये होने वाली मन आदि की क्रियाओं को पुरुष जिस धृति के द्वारा धारण करता है वह धृति राजसी है। दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धृति के द्वारा स्वप्न को, निद्रा और विषयों के अनुभव से होने वाले मद को अर्थात् स्वप्न और मद आदि के उद्देश्य से प्रवृत्त हुई मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को नहीं छोड़ता-उन्हें धारण किये रहता हैं तथा भय, शोक, विषाद आदि की देने वाली साधनरूपा मन-प्राणादि की क्रियाओं को भी धारण किये रहता है, वह धृति तामसी है। हे भरत श्रेष्ठ! पूर्वोक्त समस्त ज्ञान, कर्म और कर्ता आदि जिसके शेषरूप हैं अर्थात् जिसके लिये है, उस सुख के भी तीन हैं, भेद अब तू सुन। जिस सुख में मनुष्य दीर्घ काल के अभ्यास से क्रमशः अतिशय प्रीति को प्राप्त होता हैं। और जिससे दुःख के अन्त को प्राप्त होता है अर्थात् सब दुःखों के आभाव का अनुभव करता है,

जो सुख पहले—योग के आरम्भ काल में बहुत प्रयास से प्राप्त होने वाला है, इसलिये तथा प्रकृति संसर्ग से रहित आत्मा का स्वरूप पहले से अनुभव किया हुआ नहीं हैं इसलिये विष के सदृश- दुःखद प्रतीत होता है, किन्तु परिणाम में जब अभ्यास के बल से प्राकृतिक संसर्ग रहित आत्मस्वरूप प्रकट हो जाता हैं तब अमृत के तुल्य हो जाता है वह आत्मबुद्धि के प्रसाद से होने वाला सुख सात्विक कहा जाता। आत्मा को विषय करने वाली बुद्धि-आत्मबुद्धि है, उसका दूसरे सभी विषयों से निवृत्त हो जाना ही प्रसाद है। अन्य समस्त विषयों से निवृत्त हुई बुद्धि के द्वारा संसर्ग रहित स्वभाववाले आत्मस्वरूप के अनुभव से उत्पन्न सुख अमृत के समान होता है, वह सुख सात्विक कहा गया है। जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है वह पहले भोगों के अनुभव काल में अमृत के समान प्रतीत होता है, किन्तु परिणाम में—परिपक्व अवस्था में विषयों की सुखरूपता के कारणभूत उनकी भूख आदि की निवृत्ति हो जाने पर वह इस लोक में भी दुःखरूप है और नरक का हेतु होने से अर्थात् परलोक में भी दुःखदायक हैं अतः उसका भोग करना विषपान करने के समान होता है, ऐसा वह सुख राजस कहा गया है। जो सुख पहले और पीछे–भोगते समय और अन्त में भी आत्मा को मोहित करने वाला होता है तथा जो निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होता है वह सुख तामस कहा गया हैं। क्योंकि यहाँ वस्तु के यथार्थ स्वरूप को न समझने का नाम मोह है निद्रा आदि भोगकाल में भी मोहकारक होते हैं, अतः निद्रा,आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न सुख तामस हैं। निद्रा मोह का कारण है। इन्द्रिय व्यापार की मन्दता का नाम आलस्य है। इन्द्रिय व्यापार की मन्दता से ज्ञान की मन्दता हो ही जाती है। कर्तव्य में असावधानी का नाम प्रमाद हैं, उसमें भी ज्ञान मन्द होता है। इसलिये आलस्य और प्रमाद दोनों ही मोह के कारण हैं। अतः निद्रा, आलस्य और प्रमाद से होने वाले सुख को तामस कहा जाता है अतः मुमुक्षुजनों को रज-तम को दबाकर सत्वगुण का संग्रह करना उचित है।

पृथिवी पर मनुष्य आदि में अथवा देवलोक के देवताओं में ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त प्रकृति संसर्ग से युक्त प्राणियों में ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जो प्रकृतिजनित इन तीनों गुणों से छूटा हुआ हो। कुछ लोग केवल त्याग से ही अमृतत्व को प्राप्त हुये, इस वचन से त्याग मोक्ष साधन है, यह त्याग ही संन्यास है.ऐसा कहते हैं। त्याग से मतलब किये जाने वाले कर्मों में कर्तापन का त्याग उसके फल का त्याग यह सब परमेश्वर को कर्ता मानने से होता है। ये सब सत्वगुण की वृद्धि के कार्य हैं। मोक्ष साधन के रूप में किये हुये कर्म परम पुरुष की आराधना ही हैं। और ऐसे कर्मों का फल उस परमपुरुष की प्राप्ति है, यह बात सिद्ध करने के लिये अब ब्राह्मणादि अधिकारियों के स्वाभाविक गुणों के भेद से विभक्त कर्तव्य कर्मों का स्वरूप वृत्तियों सहित बतलाते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों का जो अपना भाव है, उसी का नाम स्वभाव है अर्थात् ब्राह्मणादि योनि में जन्म होने से प्राचीन कर्म का नाम स्वभाव हैं। उससे सत्वादि गुण उत्पन्न होते हैं। ब्राह्मण के स्वभाव से रज-तम को दबाकर बढ़ा हुआ सत्वगुण उत्पन्न होता हैं। क्षत्रिय के स्वभाव से सत्व तम को दबाकर बढ़ा हुआ रजोगुण उत्पन्न होता है। वैश्यके स्वभाव से सत्व-रज को दबाकर थोड़ा बढ़ा हुआ तमोगुण उत्पन्न होता है। शूद्र के स्वभाव से सत्व और रज को दबाकर अत्यन्त बढ़ा हुआ तमोगुण उत्पन्न होता इन गुणों स्वभाव जनित के सहित विभाग किये हुये कर्म शास्त्रों के द्वारा प्रतिपादित हैं।

शम=बाहरी इन्द्रियों का नियमन, दम=अन्तः करण का नियमन, तप=भोगों का नियमन

रूप शास्त्रसिद्ध शारीरिक क्लेश, शौच=शास्त्रीय कर्म सम्पादन की योग्यता, क्षमा=दूसरों के द्वारा पीड़ा पहुंचाने पर भी चित्त में विकार का न होना, आर्जव=दूसरों के सामने मन के अनुरूप ही चेष्टा प्रकट करना, ज्ञान=इस लोक और परलोक के यथार्थ स्वरूप को समझलेना, विज्ञान=परमतत्व के विषय में असाधारण विशेष ज्ञान, आस्तिकता=सम्पूर्ण वैदिक सिद्धान्त की सत्यता का उत्तम निश्चयात्मक ज्ञान जो हिल न सके, अर्थात् जो परब्रह्म शब्द से कहा जाता है, सम्पूर्ण दोषों के गन्ध से सर्वथा रहित, सीमारहित, निरतिशय ज्ञान शक्ति आदि असंख्य कल्याण गुणों से युक्त, वेद वेदान्त से जानने योग्य, भगवान् पुरुषोत्तम वासुदेव समस्त जगत् के एक मात्र कारण, आधार, प्रवर्तक है; समस्त वैदिक कर्म उसी की आराधना हैं, उन कर्मों से आराधित भगवान् धर्म,अर्थ,काम, मोक्ष प्रदान करते हैं। इससिद्धान्त की सत्यता का निश्चय ही आस्तिकता है। ये सब कर्म ब्राह्मण के स्वभाविक कर्म हैं।

शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, युद्ध से न भागना, दान और ईश्वर भाव ये सब क्षत्रिय के स्वभावज कर्म हैं। शौर्य=युद्ध में निर्भयता से प्रवेश करने के सामर्थ्य, तेज=दूसरे से न दबना, धृति =आरम्भ किये कर्म में विघ्न आजाने पर भी उसे पूर्ण करने का सामर्थ्य, दक्षता=समस्त क्रियाओं के सम्पादन करने का सामर्थ्य, ये सब और अपनी मृत्यु का निश्चय होने पर पीठ न दिखाने का स्वभाव, दान=अपनी सम्पत्ति को दूसरों की सम्पत्ति बना देने का त्याग और ईश्वर भाव=अपने से अतिरिक्त समस्त जन समुदाय को नियमन करने का सामर्थ्य ये क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।

कृषि=खेती, गोरक्षा पशुपालन, व्यापार वाणिज्य अर्थात् धन संचय के हेतु क्रय विक्रयादि रूप कर्म ये तीनों वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं और पूर्वोक्त तीनों वर्णों की सेवा करना यह शूद्र का स्वाभाविक कर्म है चारों वर्णों की जीविका सहित उनके शास्त्र विहित यज्ञादि कर्तव्यकर्मों का प्रदर्शन करने के लिये यह पूर्वोक्त वर्णन है। यज्ञादि तीनों वर्णों के लिये समान हैं। शम दमादि भी मुमुक्षु तीनों वर्णों को समान हैं। ब्राह्मण में सत्व का उद्रेक स्वाभाविक है अत, उसके लिये शम दम सुख साध्य हैं, यह विचार कर शम दमादि उसके स्वभाव कर्म बतलाये हैं। क्षत्रिय-वैश्य में स्वभाव से रज और तमोगुण की प्रधानता होने से उनके लिये शमादि कष्ट साध्य हैं। ब्राह्मण की वृत्ति यज्ञ करवाना, विद्या पढ़ना, प्रतिग्रह स्वीकार करनाहै, क्षत्रिय की वृत्ति राष्ट्र का पालन करना और वैश्य की वृत्ति कृषि आदि है। शूद्र का कर्तव्य और वृत्ति दोनों ही पूर्वोक्त तीनों वर्णों की सेवा करना मात्र करणीय है।

अपने—अपने कर्म में लगा हुआ, मनुष्य परमपद की प्राप्ति रूप संसिद्धि को पाता है. वह परमपद को कैसे प्राप्त करता है,वह प्रकार तू मुझ से सुन। जिससे प्राणियोंकी उत्पत्ति आदि प्रवृत्तियां होती हैं और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस इन्द्रादि के अन्तरात्मा रूप से स्थित मुझ परमेश्वर को अपने कर्मो के द्वारा पूजन कर मनुष्य मेरे प्रसाद से मेरी प्राप्ति (सिद्धि) को पाता है। अपना धर्म विगुण होने पर भी अच्छी तरह अनुष्ठान किये हुये परधर्म से श्रेष्ठ है। क्योंकि स्वभाव नियत कर्म करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता है। कर्तापन का त्याग पूर्वक होने वाला मेरा आराधन रूप कर्म स्वधर्म है। वह विगुण होने पर भी ज्ञानयोग रूप परधर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है, क्योंकि स्वभाव नियत कर्म करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! स्वाभाविक कर्म सदोष हो तो भी उसका त्याग नहीं करना चाहिये। ज्ञानयोग की योग्यता वाले को भी कर्मयोग ही करना चाहिये। क्योंकि सभी कर्म सम्बन्धी

आरम्भ और ज्ञान सम्बन्धी आरम्भ धूएँ से अग्नि की भाँति दोष=दुःख से आवृत है। भेद यह हैकि कर्मयोग सुगम तथा प्रमाद रहित है और ज्ञानयोग इसके विपरीत है। जिसकी बुद्धि सर्वत्र फल आदि में आसक्त नहीं है, जो जितात्मा है=मन को जीत चुका है और परमपुरुष को कर्ता समझने के कारण अपने कर्तत्व से निःस्पृह हो चुका है, ऐसा पुरुष संन्यास से युक्त होकर कर्म करता हुआ 'परम नैष्कर्म्य सिद्धि' को पा जाता है अर्थात् आगे कहा जाने वाली जो इन्द्रिय सम्बन्धी समस्त कर्मों की उपरामतारूप ध्यानयोग की प्राप्ति को पा जाता है। उसे मरण काल पर्यन्त नित्यप्रति किये हुये कर्मयोग की फलरूपा ध्यानसिद्धि को प्राप्त पुरुष जिस प्रकार से बर्तता हुआ ब्रह्म को प्राप्त होता है, वह तू मुझसे संक्षेप में समझ। जो ज्ञान की परा—निष्ठा है, इस वाक्य से वह ब्रह्म विशेष रूप से बताया जाता है। अर्थात् जो ध्यानरूप ज्ञान की परानिष्ठा—परम प्राप्य वस्तु है, उसको तू जान।

विशुद्ध बुद्धि से=यथार्थ आत्मतत्व को विषय करने वाली बुद्धि से युक्त होकर, धृति के द्वारा आत्मा को वश में करके अर्थात् विषयों से विमुख करने के अभ्यास से मन को योग के योग्य बनाकर शब्दादि विषयों को त्यागकर=उन्हें दूर हटाकर, उनके निमित्त से होने वाले राग द्वेषों का नाश करके, ध्यान के विरोधी विघ्नों से रहित एकान्त देश में रहता हुआ, लघु आहार करता हुआ, मन वाणी और शरीर को जीतकर= तीनों की वृत्तियों को ध्यानाभिमुखी करके, मृत्युपर्यन्त प्रतिदिन ध्यान योग के परायण होकर, वैराग्य का आश्रय लेकर=ध्येय तत्व के अतिरिक्त विषयों में दोष दर्शन के अभ्यास से उन उन में वैराग्य को बढ़ाता हुआ, अनात्मा में आत्माभिमान रूप अहंकार को उसकी वृद्धि में वासना बल को और उसके कार्य रूप दर्प, काम, क्रोध एवं परिग्रह को छाड़कर, ममता रहित हो-सभी अनात्माओं में आत्मीय बुद्धि को त्यागकर, शान्त=एक आत्मा के अनुभव में सुखी पुरुष ब्रह्मभाव का पात्र होता है-समस्त बन्धनों से मुक्त होकर यथार्थ आत्मस्वरूप का अनुभव करता है।

अपरिच्छिन्न एक मात्र ज्ञानस्वरूप से आविर्भूत और स्वाभाविक ही एक मात्र मेरा शेष=मैं ही जिसका स्वामी हूँ, ऐसा आत्मा जिसका स्वरूप है उसे ब्रह्मभूत कहा जाता है, अर्थात् आत्मा को भगवान् के अधीन रहने वाला बताया है। ऐसा ब्रह्मभूत,प्रसन्नात्मा पुरुष मेरे अतिरिक्त किसी भी भूत विशेष लिये न तो शोक करता है न किसी की आकांक्षा करता,प्रत्युत मेरे से अतिरिक्त वस्तु मात्र को तृणवत् समझता हुआ वह मेरी पराभक्ति को प्राप्त कर लेता है जो कि अत्यन्त प्रेम के अनुभव रूपा कही गयी है।

स्वरूप और स्वभाव से मैं जो हूँ तथा गुण और विभूति के कारण मैं जितना हूँ मुझ को ऐसी पराभक्ति के द्वारा मनुष्य तत्वसे मुझे जान लेता हैं। उस तत्वज्ञान के बाद उस पराभक्ति से मुझ में प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार फल तथा कर्तृत्वाभिमान का त्याग करके परम पुरुषको आराधना के रूप में किये गये वर्णाश्रमोचित नित्य नैमित्तिक कर्मों का फल बताया गया,इसी प्रकार से किये गये काम्यकर्मों का भो यही परिणाम है। मेरा आश्रय ग्रहण करके=कर्तृत्वादि का मुझ में त्याग करके जो पुरुष केवल नित्य—नैमित्तक कर्मों को ही नहीं, किन्तु समस्त काम्यकर्मो को भी करता हुआ मेरी कृपा से अविनाशी अव्यय पद को प्राप्त हो जाता है। मुझे प्राप्त हो जाता है। चित्त से—मैं भगवान् काहूं और भगवान् मेरे नियामक हैं, इस बुद्धि से कर्तापन एवं आराध्य के सहित सम्पूर्ण कर्मों का मुझ

में भली भांति त्याग करके तथा मेरे परायण होकर=फलरूप से 'मैं ही प्राप्त करने योग्य हूँ, इस प्रकार समझकर कर्म करता हुआ इसी बुद्धि योग का आश्रय लेकर निरन्तर मुझ में ही चित्त लगाये रहने वाला हो। मुझ में चित्तवाला होकर सब कर्म करता हुआ तू सम्पूर्ण सांसारिक कठिनायों से केवल मेरी कृपा से ही पार हो जायेगा। परन्तु यदि तू अहंकार से='मैं स्वयं ही समस्त कर्तव्य अकर्तव्य को अच्छी प्रकार जानता हूं' मेरे कथन को नहीं सुनेगा तो नष्ट हो जायेगा। मेरे सिवा ऐसा कोई नहीं जो सम्पूर्ण प्राणी मात्र के कर्तव्य अकर्तव्य को जानता हो और उन पर शासन करता हो। जो तू अहंकार का अपने हिताहित के ज्ञान के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता के अभिमान का आश्रय लेकर मेरी आज्ञा का अनादर करके यह मानता है कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा' यह तेरा स्वतन्त्र निश्चय मिथ्या हो जायगा। क्योंकि मेरी स्वतन्त्रता से उद्विग्न चित्त हुए तुझ अज्ञानी को प्रकृति बल पूर्वक युद्ध में लगा देगी। हे अर्जुन! क्षत्रिय का स्वाभाविक कर्म शौर्य हैं, उससे विवश होकर दसरों के द्वारा किये जाते हुये अपमान को न सहकर तू स्वयं ही यह युद्ध करेगा, जिसको इस समय मोह से नहीं करना चाह रहा है। ईश्वर=सबका नियामक वासुदेव सब प्राणियों के हृदय देश में अर्थात् सम्पूर्ण प्रवृत्ति-निवृत्तियों के मूल में ज्ञान के उत्पत्ति स्थान में रहता है और अपने ही द्वारा बनाये हुये शरीर-इन्द्रिय आदि के रूप में स्थित प्रकृतिरूप यन्त्र पर आरूढ़ हुये समस्त प्राणियों को अपनी सत्वादि गुणमयी माया से गुणोंके अनुसार घुमाता रहता है। इसप्रकार मुझ ईश्वर के द्वारा पूर्व कर्मो के अनुसार प्रकृति के अनुसरण में लगाये हुये हैं। अब इस माया की निवृत्ति का उपाय बताते हैं—

हे—भारत! सर्वभाव से तू उस ईश्वर की शरण में जा। अर्थात् आज्ञा का अनुसरण कर। उसके प्रसाद से ही तू परमशान्ति=सभी कर्मबन्धनों से रहित अवस्था को और शाश्वत स्थान परमपद को प्राप्त होगा। इस प्रकार यह मुमुक्षु पुरुषों के द्वारा जानने में आने योग्य, गुप्त से भी गुप्ततम कर्मयोग विषयक ज्ञानयोग विषयक और भक्तियोग विषयक ज्ञान मैंने सम्पूर्णरूप से तुझ से कह दिया। इस पर पूर्ण विचार कर अपने अधिकारानुसार जैसी इच्छा हो वैसा ही कर। इन तीनों योगों में से जिसे चाहे उसी में लग जा। मेरा अत्यन्त प्रिय है इसलिये तेरे हित की बात कहूंगा।

मुझ में मन वाला हो, अर्थात् ज्ञान, ध्यान और उपासना आदि शब्दों से वाच्य मेरा अत्यन्त प्रिय स्मरण का प्रवाह ही यहां 'मुझमें मन वाला हो' इसका तात्पर्य है। 'मेरा भक्त हो-' मुझमें अत्यन्त प्रेम करके बार बार मेरा चिन्तन करता रह। 'मेरापूजन करने वाला हो'=मेरा भक्त होकर मेरा पूजन, आराधनाकर, परिपूर्ण शेषवृत्ति अर्थात् भगवान् कीसर्वथा पूर्ण अधीनता को ही आराधना कहा गया है। 'मुझ को प्रणाम कर, अत्यन्त प्रेम पूर्वक बहुत अधिक नम्रभाव को ग्रहण कर। ऐसा करके तू मुझको ही प्राप्त होगा। यह मैं सत्य प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूँ। तू मेरा प्रिय है। जिसकी प्रीति मुझमें अत्याधिक होती है,मेरी प्रीतिभी उसमें अत्यधिक होती हैं। उसका वियोग न सह सकने केकारण उसे अपनी प्राप्ति करादेता हूं। अतः तू मुझको ही प्राप्त होगा।

सब धर्मों का परित्याग करके तू मुझ एक की शरण में आजा। परमकल्याण की प्राप्ति के साधनभूत कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियाग रूप सब धर्मों को मेरी आराधना के रूप में अत्यन्त प्रेम से अधिकार के अनुसार करता रह और उन्हें सतत करते हुये मेरी बतलायी हुई रीति से फल, कर्म और कर्तापन के त्याग के द्वारा सबका परित्यागकरके मुझ एक को ही आराध्य देव, सबका कर्ता और प्राप्त होने योग्य समझता रह और उस प्राप्तिका उपायभी मुझको ही समझ। मैंतुझे सबपापों से छुड़ा

दूंगा, अर्थात् तुझे मैं अपनी प्राप्ति के विरोधी जो कर्तव्यका न करना रूप अनादिकाल के संचित सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा। तू शोक मत कर।

अथवा हे अर्जुन! भक्तियोग—आरम्भ के विरोधी अनादिकाल से सञ्चित विविध प्रकार के अनन्तपापों के अनुसार उनके प्रायश्चित्त रूप जो कृच्छ्र चान्द्रायण, कूष्माण्ड वैश्वानर, प्राजापत्य व्रातपति, पवित्रेष्टि त्रिवृत अग्निष्टोमादि व्रत और यज्ञादि नाना प्रकार के अनन्त धर्म हैं, उनका तुझ सीमित समय तक जीवित रहने के स्वभाव वाले मनुष्य के द्वारा अनुष्ठान होना कठिन है, अतः तू उन सब धर्मों का परित्याग करके भक्तियोगके आरम्भ की सिद्धि के लिये मैं जो परमदयालु किसी भी प्रकार भेद भाव का विचार किये बिना ही समस्त लोकों को शरण देने वाला, शरणागतवत्सलता का समुद्र हूं, उसी की शरण में आजा। मैं तुझे भक्तियोग आरम्भ के विरोधी उन सब पापों से छुड़ा दूंगा, तू शोक मत कर।

यह परमगुप्त रखने योग्य शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है, इसे तुझको न अतपस्वी—तप न तपने वाले मनुष्य के प्रति, अर्थात् तपस्या करने वाला यदि भक्त न हो तो उसे नहीं सुनना और जो भक्त तो हो लेकिन सुनना न चाहता हो तो ऐसे भक्तको भी नहीं सुनाना चाहिये। तथा जो मेरी निन्दा करने वाला है अर्थात् बताये हुये मेरे स्वरूप, गुण, ऐश्वर्य आदि में जो दोष देखता है या अविश्वास करता है, उसे भी यह शास्त्र नहीं सुनाना। जो मनुष्य इस परमगुह्य शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा। इसकी व्याख्या करेगा। वह मुझ में परमभक्ति करके मुझको ही प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं है। मनुष्यों में उसके=भक्तों में गीता कहने वाले के सिवा दूसरा कोई भी मनुष्य मेरा अति प्रिय कार्य करने वाला नहीं हुआ और न इसके बाद कोई होने वाला ही है। शास्त्र के अधिकारी को शास्त्र न सुनाने की अपेक्षा भी अनधिकारी को शास्त्र न सुनाना अधिक अनिष्टकारी नहीं है इसलिये पहले अनधिकारियों का वर्णन किया गया। जो हम दोनों इस धर्ममय संवाद का अध्ययन मात्र करेगा उससे मैं गीता में वर्णित ज्ञानयज्ञ के द्वारा पूजित हो जाऊँगा, ऐसी मेरे मति है। जो श्रद्धावान् और अदोषदर्शी पुरुष इस गीता शास्त्र का केवल श्रवण मात्र करता है, वह भी उसी के प्रभाव से भक्तिविरोधी पापों से छूटकर पुण्यकर्म करने वाले मेरे भक्तों के लोकों को प्राप्त हो जाता है। हे पार्थ! भैया अर्जुन! क्या तूने मेरे द्वारा कहे गये इस शास्त्र को एकाग्रचित्त से सुना? जिस अज्ञान से मोहित हुआ तू 'युद्ध नहीं करूँगा' ऐसे कहता था, वह तेरा अज्ञान जनित मोह क्या नष्ट हो गया?

अर्जुन बोला-हे अच्युत! विपरीत ज्ञान को, मोह कहा गयाहै, वह मेरा मोह तुम्हारे प्रसादसे सर्वथा नष्ट हो गया है। यथार्थ तत्वज्ञान को स्मृति कहा जाता है, वह भी तुम्हारे प्रसाद(कृपा से)मुझे मिल गयीहै। भावार्थ यह है कि अनात्मा प्रकृति में आत्माभिमान कर लेना और समस्त चेतनाचेतन वस्तु परमात्मा का शरीर होने से वही जिसका आत्मा है उसे या उसी को न मानना और नित्य नैमित्तिक समस्त कर्म परमात्मा की आराधना के रूप में किये जाने पर जो उसकी प्राप्तिके उपाय रूप हैं,उनको बन्धन कारक समझ बैठना, ऐसा जो मोह था, वह सारा सर्वथा नष्ट हो गया। आत्मा प्रकृति से विलक्षण है और प्रकृति के प्रभाव सेरहित वह ज्ञातापन के स्वभाववाला, परमात्मा का शेष (किंकर) उसी के नियमन में रहने वाला और एक रूप है, आत्मा को ऐसा समझना तथा भगवान् सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय रूप लीला करने वाले हैं, सम्पूर्ण दोषों से रहित हैं, एक मात्र

कल्याण स्वरूप स्वाभाविक अपार और अतिशय ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, शक्ति और तेज के साथ समस्त कल्याणमय गुणों के महान् सागर हैं, वही परब्रह्म, परमपुरुष शब्दों से कहे जाते हैं। उनके यथार्थ स्वरूप को समझ लेना, उसके अभ्यास सहित प्रतिदिन वर्धनशील ईश्वर की प्रीतिरूपा भक्ति करना परमपुरुष की प्रीतिरूप फल वाले कर्मों से और निषिद्ध कर्मो को हटाने वाले शम-दमादि आत्मगुणों से प्राप्त की जाने वाली परमात्मा की भक्ति में परिणत उपासना ही जिस ईश्वर की प्राप्ति कराने वाली है, वेदान्त वेद्य परम पुरुष वासुदेव तुम ही हो ऐसा सम्पूर्ण ज्ञान मुझ का प्राप्त हो चुका है। इस कारण मैं अब बन्धु स्नेह जनित, करुणा से बढ़े, विपरीत ज्ञान मूलक सम्पूर्ण शोक से छुटकर सर्वथा सन्देह रहित हो स्व स्वभाव में स्थित हूं। अब मैं तुम्हारे बचनों का पालन करूँगा, यूद्धादि कर्म करूँगा।

पहले धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा था कि मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने युद्ध में क्या किया ? इसका उत्तर देते संजय बोला—इस प्रकार मैं ने महात्मा-महान् बुद्धिमान वासुदेव श्रीकृष्ण का और उनके चरणों के आश्रित उनकी बुआ पृथा के पुत्र अर्जुन का यह उपर्युक्त रोमांचकारी अद्भुत संवाद सुना। श्री व्यास जी की कृपा से यह योग नामक परम गुप्त रहस्य मैं ने स्वयं योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से साक्षात् कहते हुये सुना। राजन् ! श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस अद्भुत और पुण्यमय संवाद को बार बार स्मरण करके मैं पुन: पुन: हर्षित हो रहा हूं। राजन् ! भगवान् के उस अति अद्भुत रुप को भी बार बार स्मरण करके मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। और मैं बार बार हर्षित हो रहा हूँ। इस विषय में बहुत न कहकर इतना ही कहता हूँ कि जहाँ योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन है वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचलनीति है यह मेरी सम्मति है।

[श्रीमद्भगवद् गीता का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ]

अनन्त सन्देश

हे अनन्तसंदेश तुम्हारा अंत नहीं होने पाये।
हे भविष्य उज्वलमय तेरा जन जनसे नात जुड़ जाये ।।
हे अनन्तसन्देश.......................
बन अखण्ड ज्योति इस जग को राह दिखाते जाना।
छिपी हुई है जहाँ कालिमा उसको दूर हटाना ।।
तू पावन पथ द्रष्टा बनकर हर दिल पर छा जाये।
हे अनन्तसन्देश.......................
हैं धनान्ध हुए सब मानव मानवता को खो बैठे हैं।
बनकर के मक्कार जगत में अपने धन पर ऐंठ रहे हैं।।
प्रबल प्रचार धर्मदूत बन जनमानस मन भाये।
हे अनन्तसन्देश ....

"कौशिक"

नन्दनन्दनसुन्दर्यै गोदायै नित्यमङ्गलम्

ले० उभयवेदान्तविद्वान् टी० के० श्रीमान् गोपालाचार्य जी महाराज

श्रीरामानुजदर्शन में दो व्रतों का प्रधानरूप से उल्लेख है, एक तो हरिवासर का, दूसरा धनुर्मास का हैं। धनुर्मास तो सन्निकट आरहा है। उसमें सम्प्रदाय के अभिलाषिओं के लिये अनेक ज्ञातव्य विषय हैं, जो प्राय: शिष्टाचारियों को जानने लायक हैं। मैंने ये विषय आन्ध्र-भाषा में लिखकर वहाँ के लोगों के लाभार्थ छपाया है। परन्तु श्री 'अनन्त-सन्देश' के सम्पादक महाशय पण्डित श्रीकेशवाचार्य स्वामी जी के अनुरोध से हिन्दी भाषा में परिवर्तन करके उसी पत्रिका के द्वारा प्रकट करना चाहता हूँ। इससे पूर्व 'श्रीगोदा नाम निर्वचन' और 'श्री और गोदाम्बा की तुलना' नाम से दो निबन्ध 'अनन्त-सन्देश' में प्रकाशित हो चुके हैं। शेष विषयों को क्रमश: धनुर्मासव्रत के अन्दर ही प्रकट करना चाहता हूँ।

श्रीगोदाम्बा का वैभव, धनुर्मास व्रताचरण के मानने योग्य कुछ नियम। प्रथम में गोकुल की व्रजाङ्गनाओं की अनुष्ठान पद्धति मनमें रख कर श्रीगोदादेवी जो की अनुष्ठान पद्धति [प्रपन्नामृत के प्रमाणों से] श्रीगोदा-अष्टोत्तरशत नामक स्तोत्र और अर्चन के उपयुक्त पृथक् पृथक् नामों की सूची। श्रीतिरुप्पावै प्रबन्ध की गाथाओं के क्रमश: तात्पर्यार्थ, गाथाओं के कुछ पदों के रहस्यार्थों की उद्घाटना। श्रीकृष्णावतार के समय जो चेतनाचेतन उनके साथ सन्निहित सम्बन्ध रखते हैं, उन सबके पूर्व रूप कैसे थे? [अथर्वण कृष्णोपनिषद् के प्रमाणों से]। श्रीतिरुप्पावै प्रबन्ध श्रुतियों का सार है, इसे उपनिषद् वाक्यों से प्रमाणित करना। इस व्रतानुष्ठान के अन्त में 'गोदा कल्याणोत्सव' करने की आदत है। बस उसके क्रम को बताने वाले कुछ श्लोक हैं, उन्हें प्रकाशित करना।

और एक मुख्य विषय है - मैंने तिरुप्पावै दिव्यप्रबन्ध के चार व्याख्यानों के मुख्य अर्थों को चुन चुन कर एक बड़े ग्रन्थ को आन्ध्रभाषा में लिखकर प्रकाशित किया था। इसके द्वारा बहुत-सा प्रचार हुआ। उसी ग्रन्थ में विपुल प्रामाणिक और गम्भीर वेदान्तार्थों को भी लिख दिया। उत्तर-भारत के शिष्टलोग उन सबको हिन्दीभाषा में भी परिवर्तन करके छपवा देने का अनुरोध कर रहे हैं। मैं तो अब नव्वे वर्ष की आयु का हूँ, न जाने भगवान् क्या क्या मुझसे करायेंगे। मैं भगवान् के संकल्प के अधीन हूँ। अन्तिम स्वांस तक यत्नवान् भवेयम्।

श्रीगोदाम्बा का वैभव—पहले समय में अर्थात् त्रेतायुग में विदेह देश के मिथिला नगर में जनक महाराज जी को यज्ञ के लिये उपयुक्त यज्ञशाला के निर्माण हेतु सोने के हल से भूमि को जोतते समय उनको श्रीमहालक्ष्मी की अवतार मूर्ति एक सुन्दर बालिका प्रत्यक्ष हुई। जनक जी ने उसे अपनी पुत्री की भावना से 'सीता' नाम रखकर प्रेम से पाला पोषा था।

उसी तरह कलियुग में श्रीविल्लिपुत्तूर नगर में विराजमान श्रीवटपत्रशायी भगवान् की आराधना के लिये पुष्प तुलसी की सेवा हेतु एक सुन्दर पुष्पवाटिका श्रीविष्णुचित्त स्वामी जी ने बना रखी थी। उसके वृक्षों को पानी पिलाने के लिये मूल में जमीन को खोदते हुये, उन्हें श्रीभूदेवी जी

ही श्रीगोदामाता के रूप में कलियुग के नल नामक वर्ष में आषाढ़ शुद्ध चतुर्थी मङ्गलवार पुष्य नक्षत्र के शुभ दिन में प्राप्त हुई। श्रीविष्णुचित्त जी ने उस बालिका को अपनी पुत्री की भावना से 'गोदा' नाम रखकर अत्यन्त प्रेम से उसका पालन पोषण करना प्रारम्भ किया। समय पर पिता जी नें उसके पंचसंस्कार करके ब्रह्मज्ञान का उपदेश भी पूरा कर दिया।

श्रीगोदाम्बा भी छोटी आयु से ही भगवान् पर अटल भक्ति रखती हुई, पिता जी के पुष्प कैंकर्य में भरपूर सहायता करती थीं। श्रीविष्णुचित्त जी प्रतिदिन भगवान् के लिये कई तरह की रंगबिरंगी सुन्दर मालायें बना कर रखते थे। श्रीगोदाम्बा जी को अर्चामूर्ति भगवान् को ही अपने पति बनाने की उत्कट इच्छा प्रारम्भ से ही होगयी थी। उसी इच्छासे पिताश्री की आँखों से बचकर उन मालाओं से अपने को सजाने लगी। एकदिन अचानक पिताश्री ने गोदा को उस अवस्था में देख-लिया और आश्चर्य चकित होगये। पिता ने श्रीगोदा को शिक्षा देने के प्रसंग में उस चेष्टा के दोष को बताकर उन मालाओं को बाहर फेंक दिया।

उस दिन भगवान् ने श्रीविष्णुचित्त को स्वप्न में दर्शन देकर कहा—'श्रीगोदा के द्वारा पहले धारण की गई मालायें मुझे समर्पित करने से ही बहुत आनन्द होता है। इसलिये प्रतिदिन मेरे लिये उनको समर्पण करते रहना। इस आदेश को पाकर श्रीविष्णुचित्त जी बड़े आश्चर्य में डूब गये। अब तो पिता श्रीका गोदाम्वा में बड़ा आदरसम्मान बेहद बढ़ गया। जैसी भगवान् ने आज्ञा दी थी, अब वे वैसाही करनेलगे। इसी संघटना से श्रीविष्णुचित्तजी गोदाजीको द्राविडभाषा में 'आंडाल' कहने लगे अर्थात् 'मेरी रक्षा के लिये अवतीर्ण माताजी' कहकर पहले से कई गुना अधिक आदर करने लगे। द्राविडभाषा में शुडिक्कोइत्त नायच्चियार' करने लगे अर्थात् प्रथम स्वयं माला को धारणकर बाद में भगवान् को समर्पण करने वाली। श्रीगोदांम्बा को भगवान् के प्राप्त होने की इच्छा अत्यधिक होने से अहर्निशि बिना निद्रा और आहार के भगवान् को पाने के लिये वह तरसने लगीं।

श्रीगोदाम्बा को बिदित हुआ कि पहले गोकुल की गोपाङ्गनाओं ने हेमन्त ऋतु में कात्यायिनी देवी का आराधनात्मक एक व्रत का अनुष्ठानकर भगवान् को अपने वश में करके अपने अभीष्ट को पाया था। इस समय श्रीगोदादेवी की विवाह करने के लायक अवस्था भी आविर्भाव होगयी थी, उसके लायक वर न मिलने से पिताश्री को बेहद चिन्ता होगयी। श्रीगोदा ने पिताश्री से स्पष्ट कह दिया कि 'मैं भगवान् केसिवा मानव से बिवाह करना नहीं चाहती हूँ। मेरा संकल्प सिद्ध न होने पर मैं मरना ही उचित समझती हूँ। इसको सुनकर पिताजी ने कहा कि 'अरी लाडिली बेटी! यह भगवान् के अव-तार का समय नहीं, वे तो अर्चामूर्ति के रूप से दिव्य मन्दिरों में विराजमान हैं। वे किसीसे कुछ बोलते नहीं, कुछ करते भी नहीं हैं। उनसे कल्याणोत्सव होगा कैसे? यह सुनकर श्रीगोदा जी ने पिता जी से कहा 'हे पूज्य पिता जी अर्चामूर्ति तो अचेतन नहीं है।

श्रीरङ्गस्थलवेंकटाद्रिकरिगिर्यादौ शतेऽष्टोत्तरे।
स्थाने ग्रामनिकेतनेष्वपि सदा सान्निध्यमासेदुषे।
अर्चारूपिणमर्चकाभिमुखतः स्वीकुर्वते विग्रहम्,
पूजां चाखिलवाञ्छितान् वितनुते सर्वस्य पुंसो हरिः॥

दिव्य मन्दिरों में विराजमान भगवान् हमारे अभीष्ट रूप को धारण करके हमारी पूजा को

मानते हुये हमारे अभीष्टों को प्रेम से सफल कर देते हैं। इसलिये आप कृपया सम्पूर्ण प्रसिद्ध स्थानों में विराजमान भगवान् का वर्णन कीजिये। मैं अपने लायक अर्चाविग्रह को चुन लूंगीं। यह सुनकर पिताजी ने सम्पूर्ण प्रमुख दिव्यदेशों में विराजमान भगवान् की मूर्तियों के सकल वैभवों के साथ सम्पूर्ण रूप से ठीक ठीक प्रशंसा के साथ सुनाया। श्रीगोदा जी का मन तो श्रीरंगनाथजी में ही लग गया था। श्रीगोदादेवी का चुनाव तो अपने स्वरूपानुरूप ही था, परन्तु अर्चामूर्ति के साथ मानव बालिका का विवाह घटित होगा कैसे ? पिताश्री बस इसी चिन्ता में मग्न होगये।

इसी को चिन्तन करके श्रीविष्णुचित्त जी को निन्द्रा के समय भगवान् ने दर्शन देकर श्री गोदाम्बा के साथ विवाह करने का अपना मन्तव्य कह दिया और अपने सारे परिवार को आज्ञा दी कि "आप सब लोग मेरे वैभव के अनुरूप सजधज के साथ श्रीविल्लिपुत्तूर जाकर श्रीविष्णुचित्त जी के साथ श्रीगोदाम्बा को यहाँ के शन्तन-मण्डप में विराजमान कीजिये। मैं उनके साथ शास्त्रोक्त विधि से विवाह धूमधाम से करूँगा। अब विलम्ब कैसा ? भगवान् का सम्पूर्ण परिवार श्रीरंगक्षेत्र से निकल पड़ा। यह देख श्रीभट्टरपिरान् (श्रीविष्णुचित्त जी) के हृदय में उथल पुथल होने लगी। वे किंकर्तव्य विमूढ़ होगये। परन्तु उनके शिष्य पाण्डय-देश के राजा श्रीवल्लभदेव राय के प्रोत्साहन से श्रीरंगनाथ भगवान् के परिवार से कई गुना अधिक वैभब के साथ श्रीविष्णुचित्त श्रीरंगक्षेत्र में पहुँच गये। सम्पूर्ण मार्ग अर्चिरादिमार्ग बन गया था। जहाँ महाराजा हों वहाँ कमी क्या होसकती थी।

जब श्रीगोदाम्बा जी की पालकी जारही थी तब लोग यह कह रहे थे—'गोदा माई पहुँच रही हैं।' 'चूडिक्कोडुत्त नाच्चियार पधार रही हैं।' 'श्री अण्डाल का शुभागमन होरहा।' 'तिरुप्पावै की गायिका देवी का आगमन होरहा है।' इस प्रकार लोगों का कोलाहल सुनने में आता था। शास्त्रोक्त विधान से कल्याणोत्सव सम्पन्न होते ही श्रीगोदाम्बा अपने नूपुरों से दिशाओं को प्रतिध्वनित करती, हाथ के कंकणों की आवाज सबके कानों तक पहुँचाती, हंस की चाल चलती, अपनी आभा को बरसाती हुई श्रीरंगनाथ की शयनमूर्ति तक अन्दर गर्भगृह में पहुँच गयी। वहाँ पहुँचते ही श्री गोदाम्बा अदृश्य होगयीं, उनका दर्शन दुर्लभ होगया। यह देख श्रीविष्णुचित्त जी की चिन्ता का पार नहीं रहा परन्तु श्रीरंगनाथ से दीगई सान्त्वना को पाकर शान्त हुये और श्रीविल्लिपुत्तूर लौट आये तथा पूर्व की भाँति श्रीवटपत्रशायी भगवान् के कैंकर्य में तत्पर होगये।

धनुर्मासव्रत के सर्वमान्य नियम—श्रीवैष्णवसम्प्रदाय में एकादशी, श्रीराम, श्रीकृष्णजयन्ती, श्रीनृसिंह, श्रीवामनजयन्ती एवं श्रीरामानुजजयन्ती व्रत के अतिरिक्त अन्य व्रत की गन्ध तक नहीं है। तथापि धनुर्मासव्रत तो उनके लिये अनिवार्य है। कोई भी व्रत बिना नियमों के नहीं होता है। बिना नियमों के पालन किये व्रत में सिद्धि नहीं मिलती। 'न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं परांगतिम्। अतएव धनुर्मासव्रत के भी कुछ नियम हैं। इसके नियमों में शिष्टाचार ही मूलतः प्रमाण है। श्रीगोदाम्बा जी ने जिस प्रकार इस व्रत का पालन किया वही प्रथम प्रमाण है, उसका दिग्दर्शन इस प्रकार है—

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥

नन्दगोकुल की कन्याओंने मार्गशीर्ष मास में व्रत को प्रारम्भ किया और अभीष्ट फल प्राप्त

किया। उनके द्वारा इस व्रत के अनुष्ठान की पद्धति इस प्रकार से थी। पौ फटने के पहले ब्राह्ममुहूर्त में 'रंगा' 'रंगा' कहती हुयी गोदा जाग उठती थी। स्नानादि कृत्यों के उपरान्त सूखे हुये शुद्धवस्त्र पहनकर मस्तक पर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करती थी। श्रीरङ्गनाथ भगवान् के छोटे विग्रह को सजाकर षोड-शोपचार से पूजन करती थी। उसके बाद दाख, किसमिस, चिरोंजी, काजू आदि मेवा डालकर मीठी खिचड़ी बनाकर भगवान् को भोग लगाती, भाव भक्ति से आराधन करती थी। सपरिकर ताम्बूल (पान) को भी समर्पण करके कर्पूर से आरती करती और उसी समय प्रतिदिन स्व-रचित द्राविडी एक एक गाथा भगवान् को सुनाती, प्रदक्षिणा नमस्कार करती, प्रभु के सामने खड़े होकर निश्चल निर्मल चित्तसे विनय के साथ अपने मन की भावना को सुनाती थी। अन्तमें भगवान्की प्रसन्नता के लिये श्रीवैष्णवों को षड-रसों से युक्त भगवत्प्रसाद पवाती थी। व्रत के साद्गुण्य के लिये स्वयं उस प्रसाद का एक कण मात्र लेती थी। स्वयं भगवत् प्रसादी केवल खिचडी (पोंगल) मात्र एक वार लेती थी। इस प्रकार तीस दिन तक श्रीगोदा ने जो तीस गाथायें सुनायीं वे ही 'तिरुप्पावै' ग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

इस कथानक को सुनकर हमें कैसा आचरण करना चाहिये, उसे भी सुनिये। शिष्टजन इस व्रत में एक माह भर क्षौर कर्म नहीं कराते अर्थात् बाल नहीं बनाते है। शरीर में तेल नहीं लगाते हैं। भोगों को छोड़कर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हैं। जमीन पर चटाई बिछाकर शयन करते हैं। अपने स्थान या आवास को छोड़कर बाहर नहीं जाते हैं। भगवान् के प्रसादी विशेष भोग में से हाथ पर रखकर प्रसाद लेते हैं, वह भी कम मात्रा में। एकवार प्रसाद पाना चाहिये। बाकी प्रसाद को भक्तों में बाँट दे। इन्हीं नियमों को श्रीगोदाम्बा ने तिरुप्पावै की द्वितीय गाथा में सूचित किया है।

जैसे—१—क्षीरसागर में शयन करने वाले परात्पर श्रियःपति को ब्राह्ममुहूर्त में उठते ही गाते रहना। २—सन्यासियों और ब्रह्मचारियों को यथाशक्ति यथोचित दान देते रहना। ३—घी, दूध आदिक छोड़ देना। ४—आखों में अंजन नहीं लगाना। ५—पुष्पों से अलंकार नहीं करना। ६—जो कार्य त्याज्य हैं उनको छोड़ देना। ७—अश्लील एवं कटु, दूसरे को चुभने वाली बातों को नहीं बोलना आदि।

श्रीगोदा अष्टोत्तरशत नामावली

ओम् श्रीरङ्गनायक्यै नमः
,, गोदायै नमः
,, विष्णुचित्तात्मजायै नमः
,, सत्यै नमः
,, गोपीवेषधरायै नमः
,, देव्यै नमः
,, भूतायै नमः
,, भोगशालिन्यै नमः
,, तुलसीकाननोद्भूतायै नमः
,, श्रियै नमः १०
,, धन्विपुरवासिन्यै नमः

ओम् भट्टनाथप्रियकर्यै नमः
,, श्रीकृष्णहितभोगिन्यै नमः
,, आभुक्तमाल्यदायै नमः
,, बालायै नमः
,, रङ्गनाथप्रियायै नमः
,, परायै नमः
,, विश्वम्भरायै नमः
,, कलालापायै नमः
,, यतिराजसहोदर्यै नमः २०
,, कृष्णानुरक्तायै नमः
,, सुभगायै नमः

ओम् सुलभश्रियै नमः
,, सलक्षणायै नमः
,, लक्ष्मीप्रियसख्यै नमः
,, श्यामायै नमः
,, दयाञ्चितदृगञ्चलायै नमः
,, फल्गुण्याविर्भावायै नमः
,, रम्यायै नमः
,, धनुर्मासक्तव्रतायै नमः ३०
,, चम्पकाशोकपुन्नागमालतीविलसत्कचायै नमः
,, आकारत्रयसम्पन्नाय नमः
,, नारायणसमाश्रितायै नमः
,, श्रीमदष्टाक्षरीमन्त्रराजस्थितमनोरथायै नमः
,, मोक्षप्रदाननिपुणायै नम,
,, मन्त्ररत्नाधिदेवतायै नमः
,, ब्रह्मण्यायै नमः
,, लोकजनन्यै नमः
,, लीलामानुषरूपिण्यै नमः
,, ब्रह्मज्ञायै नमः ४०
,, अनुग्रहायै नमः
,, मायायै नमः
,, सच्चिदानन्दविग्रहायै नमः
,, महापतिव्रतायै नमः
,, विष्णुगुणकीर्तनलोलुपायै नमः
,, प्रपन्नार्तिहरायै नमः
,, नित्यायै नमः
,, वेदसौधविहारिण्यै नमः
,, श्रीरङ्गनाथमाणिक्यमञ्जर्यै नमः
,, मञ्जुभाषिण्यै नमः ५०
,, सुगन्धार्थग्रन्थकर्त्र्यै नमः
,, रङ्गमङ्गलदीपिकायै नमः
,, ध्वजवज्राङ्कुशाब्जाङ्कमृदुपादल-
लाञ्चितायै नमः
,, तारकाकारनखरायै नमः
,, प्रवालमृदुलाङ्गुल्यै नमः
,, कूर्मोपमेयपादोर्ध्वभागायै नमः
,, शोभनपार्ष्णिकायै नमः

ओम् वेदार्थभावविदिततत्व-
बोधाङ्घ्रिपङ्कजायै नमः
,, आनन्दबुद्बुदाकारसुगुल्फायै नमः
,, परमायै नमः ६०
,, अणुकायै नमः
,, तेजश्रियोज्ज्वलधृतपादाङ्गुलिसुभूषितायै नमः
,, मीनकेतनतूणीरचारुजंघाविराजितायै नमः
,, ककुद्वज्जानुयुग्माढयायै नमः
,, स्वर्णरम्भाभसक्थिकायै नमः
,, विशालजघनायै नमः
,, पीनसुश्रोण्यै नमः
,, मणिमेखलायै नमः
,, आनन्दसागरावर्तगम्भीराम्भोजनाभिकायै नमः
,, भास्वत्वलित्रिकायै नमः ७०
,, चारुजगत्पूर्णमहोदर्यै नमः
,, नवमल्लीरोमराज्यै नमः
,, सुधाकुम्भायतस्तन्यै नमः
,, कल्पमालानिभभुजायै नमः
,, चन्द्रखण्डनखाञ्चितायै नमः
,, सुप्रवालाङ्गुलिन्यस्तमहारत्नाङ्गुलीय-
कायै नमः
,, नवारुणप्रवालाभपाणिदेशसमञ्चितायै नमः
,, कम्बुकण्ठ्यै नमः
,, सुचुबुकायै नमः
,, बिम्बोष्ठ्यै नमः ८०
,, कुन्ददन्तयुजे नमः
,, कारुण्यरसनिष्यन्दिनेत्रद्वयसुशोभितायै नमः
,, मुक्ताशुचिस्मितायै नमः
,, चारुचाम्पेयनिभनासिकायै नमः
,, दर्पणाकारविपुलकपोलद्वितयाञ्चितायै नमः
,, अनन्तार्कप्रकाशोद्यन्मणिताटङ्कशोभितायै नमः
,, कोटिसूर्याग्निसङ्काशनानाभूषणभूषितायै नमः
,, सुगन्धवदनायै नमः
,, सुभ्रुवे नमः
,, अर्धचन्द्रललाटिकायै नमः ९०
,, पूर्णचन्द्राननायै नमः

ओम् नीलकुटिलालकशोभितायै नमः
" सौन्दर्यसीमायै नमः
" विलसत्कस्तूरीतिलकोज्जलायै नमः
" धगद्धगायमानोद्यन्मणिसीमन्तभूषायै नमः
" जाज्वल्यमानसद्रत्नदिव्यचूडावतंसकायै नमः
" सूर्यार्धचन्द्रविलसद्भूषणाञ्चितवेणिकायै नमः
" निगन्निगद्रत्नपुञ्जप्रान्तस्वर्णनिचोलिकायै नमः
' सद्रत्नाञ्चितविद्योतबिद्युत्पुञ्जाभ-
शाटिकायै नमः
" अत्यर्कानलतेजोऽधिकमणिकञ्चुक-
धारिण्यै नमः १००

ओम् नानामणिगणाकीर्णहेमाङ्गदभूषितायै नमः
" कुङ्कुमागरुकस्तूरीदिव्यचन्दनचर्चितायै नमः
" स्वोचितौज्वल्यविविधविचित्रमणिहारिण्यै नमः
" असंख्येयसुखस्पर्शसर्वातिशयभूषणायै नमः
" मल्लिकापारिजातादिदिव्यपुष्पस्त्र-
गञ्चितायै नमः
" श्रीरङ्गनिलयायै नमः
" पूज्यायै नमः
" दिव्यदेशसुशोभितायै नमः १०८

।। श्रीगोदाष्टोत्तरशत नामावली समाप्ता ।।

पढ़ें और मनन करें

एक बात आपको और सुनाते हैं—पहले वैसे एक सज्जन यह बात सुनकर बहुत चिढ़ गये थे, पर भागवत में लिखी हुई बात है, इसलिये आपको सुना देते हैं। भागवत के सातवें स्कन्ध के चौहहवें व पन्दरहवें अध्याय में ये तीन बातें कही गयी—

१—अपने पसीने से जो पैदा होते हैं वे और दूसरे के पसीने से जो पैदा होते हैं वे, दोनों एक ही हैं। यदि दोनों को आदर की दृष्टि से देखेंगे यो दोनों मिलकर रहेंगे।

२—दुनिया में आपका कितना हैं ? 'यावद् भ्रियेत् जठरं' जितना आपके पेट के भीतर जाता है, वह आपके हक का है, वह आपको मिल गया। और बाकी तो आपके हक का है कि नहीं, इसका पता नहीं है।

जबलपुर में एक सज्जन को चार सौ रुपये के नोट मिले। उसको उन्होंने लोहे के डब्बे में रखकर धरती में गाड़ मिया और चार महीने के बाद जब निकला तब नोट की छगह पानी निकला। तो भाई मेरे ! जितना तुम्हारे पेट में जाता है, उतना तुम्हारे हक का है और जो बाहर है, वह तुम्हारे हक का है कि नहीं, इसका कुछ पता नहीं है। तो पहली बात यह बतायी कि अपने बेटे और दूसरे के बेटे, सब एक ही हैं। बात यह बतायी कि अपने पेट में जितना जाता है, उतना ही अपना होता है।

३ – तीसरी बात जो बतायी, वह बहुत ही अद्भुत है—आपके घर में कोई अतिथि आ जाये तो उसकी सेवा आप स्वयं भी कीजिये और अपनी पत्नी को भी उसकी सेवा में लगाइये। क्योंकि पत्नी से इतनी अधिक ममता होती है कि आदमी उसके लिये माँ-बाप गुरु से द्वेष तो कर ही लेता है स्वयं मरने को भी तैयार रहता है। तो जिससे ज्यादा ममता होती है. उसको औरों की सेवा में लगाकर, ममता शिथिल करनी चाहिये।

—ब्रह्मलीन श्रीअखण्डानन्द जी सरस्वती

प्रेषक—नरेशचन्द्र शर्मा 'नारायणदास' वृन्दावन

नेपाल में दिव्यदेश का निर्माण

श्रिय:पति परंब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान् नारायण, सम्पूर्ण कल्याणगुणमहोदधि लक्ष्मीजी के प्रियपति अपने संकल्पानुरूप स्वरूप स्थिति प्रवृत्ति वाले असंख्य दिव्य सूरियों द्वारा संस्तुत त्रिपाद्-विभूति में रहने वाले श्रीमन्नारायण ने अनादिकाल से नानायोनिसमुत्पन्न और अनेक प्रकार की यातनाएँ अनुभव करते जीवात्माओं को देखकर इन जीवों के दु:ख दूर करने के लिये पाँच प्रकार के अवतार धारण किये, वे इस प्रकार हैं—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, और अर्चावतार इनमें से पर और व्यूह अवतार का तो नित्यमुक्त लोग ही लाभ कर सकते हैं। विभव=श्रीरामकृष्णादि अवतार उस समय के लोगों के लिये उद्धार के विषय हुए। अन्तर्यामी परमात्मा का ध्यान अष्टाङ्गयोग समाधि तथा विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद, अनुद्धर्ष रूप सप्त साधन द्वारा उत्पन्न तैलधारावदविच्छिन्नस्मृतिरूपा भक्ति से युक्त कोई एकाध महात्मा लोग ही साक्षात्कार कर लाभ उठा सकते हैं। सर्वसाधारण के उद्धार के लिये अर्चावतार को ही आचार्यों ने मुख्य उपाय माना है। श्री रामानुज स्वामी ने श्रीरंगगद्य में श्रीरंगनाथ भगवान् से स्तुति करते हुये कहा है—'तवानुभूति संभूत प्रीतिकारितदासताम्। देहि मे कृपया नाथ न जाने गतिमन्यथा ।।

भक्त लोग अपनी शक्ति के अनुरूप मठ मन्दिर दिव्देश आदि का निर्माण करते हैं इनमें दिव्य-देश का निर्माण प्रारम्भ से लेकर प्रतिष्ठा पर्यन्त और उसके बाद भी समस्त कार्य पूजा, अर्चनादि सम्पूर्ण शास्त्रविधि से होते हैं। पाञ्चरात्रागम और वैखानसागम पद्धति दो ही मुख्य हैं। श्रीरामानुज स्वामी ने पाञ्चरात्रागम को मुख्य रूप से अपनाया। दिव्यदेशों में छह प्रकार की मूर्तियों का विधान भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये है। १-मूलमूर्ति, २-उत्सव मूर्ति, ३-स्नान मूर्ति, ४-वलिप्रदान मूर्ति, ५-शयन मूर्ति, ६-कर्मार्चामूर्ति। छह के स्थान पर तीन या न्यूनाधिक मूर्तियों के रखने की भी आज्ञा है। किन्तु पूर्वोक्त छह प्रकार से अधिक मूर्तियों के एक जगह रखने का विधान नहीं है। उपरोक्त प्रकार से तथा दिव्य प्रबन्ध पाठ के विधान से भी दिव्यदेश का विशेष महत्व है। दिव्यदेशों के दर्शन का भी विशेष महत्व है।

नेपाल देश प्राचीन काल से ही हिन्दूओं का पवित्र स्थान है। जहाँ स्वयं श्रीमुक्तिनारायण भगवान् विराजमान हैं। यहाँ अन्यान्य पवित्र नदियाँ और तीर्थ आदि भी हैं। नेपाल के मुक्ति क्षेत्र से प्रबाहित गण्डकी नदी में असंख्य शालिग्राम भगवान् अनेक अवतारों के रूप में उपलब्ध होते हैं। अत: नेपाल स्वत: सिद्ध देवस्थान तो है ही। फिर भी लोगों की दृष्टि में जैसे भारत में श्रीरंगम् आदि दिव्यदेश हैं, उसी प्रकार नेपाल में भी श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के एक विशाल मन्दिर निर्माण को ध्यान में रखते हुए श्रीमुक्तिनारायण से प्रवाहित होने वाली गण्डकी संगम श्रीनारायगी नदी जिसकी स्कन्ध पुराण हिमवत् खण्ड अध्याय एक में महिमा इस प्रकार वर्णित है—

दृष्ट्वा जन्मशतं पापं पीत्वा जन्म शतोद्भवम्। स्नात्वा जन्मशतं पापं गण्डकी हरते सदा ।।४१।।
त्रिवेण्यां मरणान्मुक्तिर्देवघट्टे च कर्मभिः। योगेन मुक्तिक्षेत्रे स्यात् सर्वथा गण्डकी जले ।।६२।।

उसी नारायणी (गण्डकी) नदी के सुरम्य तट गैंडाकोट नामक स्थल में श्रीसन्तनारायण जी के द्वारा आराधित श्रीनटवर नारायण भगवान् ने स्वयं श्रीसन्तनारायण जी को निमित्त बनाकर दाक्षिणात्य पद्धति से एक विशाल दिव्यदेश (मन्दिर) निर्माण करवा रहे हैं। यहीं पर श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीडोंगरे जी महाराज की अध्यक्षता में अखण्ड 'श्रीहरेराम····हरेकृष्ण' कीर्तन चलता रहा है।

श्रीसन्तनारायण महानुभाव भगवदिच्छा से प्रेरित होकर भगवत् कृपावलंवन लिये तन, मन, धन से भगवान के दिव्यदेश के दर्शन कराने में जैसे तल्लीन हैं वैसे ही हम लोगों का भी पुनीत कर्तव्य है कि अपने पास प्रभु प्रदत्त तन मन धन से यथाशक्ति सहायता कर भगवान् का मंगलाशासन प्राप्त करें।

विनीत—

श्रीलक्ष्मण रामानुज श्रीवैष्णवदास

श्रीगादी स्वामीजी महाराज की धर्म प्रचार यात्रा

नागपुर के शिष्यों के विशेष आग्रह पर प्रतिवादि भयंकर मठाधीश अनन्तश्री विभूषित जगद्गुरु श्रीश्री १००८ श्रीमद् श्रीनिवासाचार्य स्वामीजी महाराज भगवान श्रीवेणुगोपाल के साथ श्री कांचीपुरम से ता० १३-१०-९२ को रवाना होकर नागपुर ता० १४-१०-९२ को पहुँचे। स्टेशन पर शिष्यों ने उपस्थित होकर उत्साह के साथ श्रीचरणों का जयघोष के साथ पुष्पहारों से स्वागत किया।

आप नागपुर में श्रीवडी मारवाड़ माहेश्वरी भवन, इतवारी में विराजे। सुबह शाम दोनों समय गोष्ठी प्रसाद वितरण होता था।

प्रतिदिन रात को महाराज श्री का प्रवचन होता था जिसमें शरणागति, नित्यानुष्ठान, गृहस्थ तथा श्रीवैष्णव धर्म इत्यादि विषयों पर सुन्दर व्याख्या करके समझाते थे।

शंख-चक्रों की वेदी चार बार हुई जिसमें बहुत से भक्तों ने आपसे दीक्षा प्राप्त की। श्रीआचार्य चरणों की ३६ छत्तीस शिष्यों ने पधरावणी पूर्ण वैभव एवं श्रद्धा के साथ करके अपनी गुरु भक्ति का परिचय दिया।

ता० २६-१०-९२ को श्रीबडी मारवाड़ माहेश्वरी पंचायत के तत्वावधान में समाज का दीपावली स्नेह सम्मेलन का आयोजन हुआ इस कार्यक्रम में श्रीचरणों से विशेष प्रार्थना करने पर आपने इस सम्मेलन के आयोजन में उपस्थित होकर समाज के सभी भक्तों को प्रवचन के बाद मंगलाशासन करते हुए आशीर्वाद दिया। इस समय श्रीबडी मारवाड़ माहेश्वरी पंचायत नागपुर की ओर से समाज के प्रतिष्ठित श्रीमान् रामप्रसादजी सारंग (फर्म-जालुराम धनराज सारंग) ने प्र०भ० जगद्गुरु स्वामीजी महाराज का विशेष अभिनन्दन किया।

प्रस्थान के समय श्रीचरणों ने अपने कर कमलों द्वारा शिष्यों को दुपट्टा ओढ़ाकर शिष्यों का आशीर्वाद रूप बहुमान किया। आप नागपुर से ता० २९-१०-९२ को श्रीनिवासजी गोरधनजी काबरा (मन्डवा वाले) बल्लारशाह के लिये पधारे।

पधरावनी कराने वाले भक्तों के नाम

श्रीभंवरलालजी मालू, दामोदरजी पूनमचन्दजी मालू, शोभागमलजी मालू, भीकुलालजी मालू, रामप्रसादजी गिरिराज बंग, पुखराजजी बंग श्रीबल्लभ मालू, रामनिवासजी काबरा, चांदमलजी काबरा वेणुगोपालजी काबरा, श्यामसुन्दरजी काबरा, गोविन्दजी काबरा, शिवप्रतापजी मानधना, श्रीनिवासजी मानधना, जुगलकिशोरजी मानधना, गौरीशंकरजी मानधना, रामवल्लभजी मोदानी, घनश्यामजी गांधी, रामस्वरूपजी मानधना, प्रेमनारायणजी गोपालदासजी मंत्री, अनन्तरामजी खण्डेलवाल, राधेश्यामजी धूत, भंवरलालजी सोमानी, श्रीनिवासजी कलंगी, रामनिवासजी जाजू, द्वारकाप्रसादजी काकणी, रामानुजजी लाहोरी, दामोदरजी तोषनीवाल, हरिकिशनजी झंवर, धनराजजी खण्डेलवाल, शंकरलालजी तोतला, कैलाशचन्द्रजी रूठीया, सत्यनारायणजी असावा, भागीरथजी रान्दढ़, (विशेष सेवा) धनराजजी द्वारकादास बजाज, शोभागमलजी सत्यनारायण मालू के सोयाबिन प्लांट (फैक्ट्री) में भक्तों ने सेवा की।

प्रेषक—रामप्रसाद गिरिराज बंग, नागपुर

हम यहाँ के नहीं हैं

—स्वामी रामसुखदासजी महाराज

हम परमात्मा के अंश हैं और परमात्मा जहाँ रहते हैं, वहीं हम रहते हैं। रामायण में भी आया है—'ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशि ॥'—यह अविनाशी है, संसार विनाशी है। यह चेतन है, संसार जड़ है। यह अमल है, संसार मल है। यह 'सहज सुख राशि' है और संसार 'दुखालयमशाश्वतम्' है तो इसकी और संसार की जाति कहाँ मिलती है? संसार और स्वयं की जाति नहीं मिलती। इसकी परमात्मा के साथ जाति मिलती है; क्योंकि यह 'चेतन अमल सहज सुख रासि' है। पहले तो यह परमात्मा का अंश और दूसरी बात, इसकी जाति परमात्मा से मिलती है, इसके लक्षण मिलते हैं परमात्मा के साथ। संसार का अंश नहीं है और संसार के साथ जाति नहीं मिलती है, लक्षण नहीं मिलते हैं। फिर? 'सो माया बस भयेऊँ गुसांई। बन्ध्यो कीट मर्कट की नाई ॥' यह माया के वश में हो गया। जैसे कि तोता पकड़ा जाता है, मर्कट पकड़ा जाता है। नहीं तो वास्तव में यह जीव परमात्मा का साक्षात् अंश है। यह संसारी नहीं है, यह ख्याल करने की बात है।

दूसरी बात यह है कि यह संसार में ठहरता कहाँ है? कभी किसी योनि में गया तो कभी किसी योनि में गया। अगर यह इसका घर होता तो यहाँ ठहरे; पर यहाँ इसका घर नहीं। इसका घर तो भगवान् है। इस वास्ते भगवान् को प्राप्त हो जाय तो फिर वहाँ से लौटता नहीं—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' (गीता ५।६) जहाँ जाने के बाद वहाँ से लौट करके फिर नहीं आते; तो क्यों नहीं आते कि वह उनका असली घर है। असली घर में पहुँच गये, अब आने की क्या जरुरत है? मुसाफिरी तो तभी तक रहती है, जब तक अपने घर से दूर रहता है; और तभी तक वह भटकता है। अपने घर पहुँचने के बाद फिर वह क्यों भटकेगा? ऐसे ही यह तो पहले से ही परमात्मा का है, बीच में केवल शरीर को अपना मान लिया है और जब यह परमात्मा के पास पहुँचता है तो इसको फिर फिरना-भटकना नहीं पड़ता। यह तब तक भटकता है जब तक असली घर में यह नहीं पहुँचा है। इस वास्ते हम संसारी नहीं हैं, जगत् के नहीं हैं। हम तो परमात्मा के हैं। वह ही हमारा धाम है। वे ही हमारे परम पिता परमेश्वर हैं। उनके हम हैं। तो हम ठीक परमात्मा के हैं। ❖

आचार्यनिष्ठ भागवताग्रेसर 'भगतजी'

दासानुदास—श्रीगोविन्दराम दरक, इलकल

श्री श्री १००८ श्री कांची प्रतिवादि भयंकर मठाधीश्वर वे० श्रीमज्जगद्गुरु श्रीस्वामी अनन्ताचा. . .ी महारा. साक्षात अनन्त भगवान् के अवतार थे। ऐसे महान् आचार्यश्री का अनुभव उनके परमैकान्तिक महान् त्यागी शिष्य परम भागबत श्रीमान् बदरीनारायण जी असावा (भगतजी) ने किया।

राजस्थानके 'खियाला' ग्राम निवासी एक गृहस्थ होने के नाते सांसारिक होते हुये भी ससार से निवृत थे। अहर्निश आचार्यश्री के सेवा में तत्पर रहते थे। साथ में एक जलपात्र एक बादनिका बिछौना शिराने देने के लिये एक बादनि की थैली जिसमें सम्प्रदाय के ग्रन्थ रखते थे। सादगीपूर्ण उनका जीवन दीप्तथा। जब आचार्यश्री बम्बई पधारे भगतजी' साथ ही थे। मुड़वानिवासी परम भागवता 'अम्मा जी' (श्रीमती चुन्नीबाई भट्टड) की प्रेरणा से बम्बई जैसे महान् नगर में 'श्रीवेंकटेश-देवस्थान' जैसे विशाल दिव्यदेश का शास्त्रोक्त विधि से बनाने का संकल्प किया। उन दिनों महाराज श्री नारायण वाड़ी में विराजते थे। नीचे वाले कमरे में भगतजी शयन करते थे। वैसे तो आचार्य श्री पलंग पर शयन करते थे। लेकिन भगतजी को साक्षात्कार हुआ 'आचार्यश्री का शेषावतार' रूप में। उन दिनों फणसवाड़ी में कोई जाने का मन नहीं करता था। ऐसी जगह में महाराज श्री ने अपने तन-मन-धन का न्योछावर करके महान् दिव्यदेश (छोटी तिरुपति) की स्थापना की।

बम्बई दिव्यदेश निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ, आचार्य श्री पुस्तक देख कर कोन सी मृत्तिका कहाँ जरूरत पड़ेगी भगतजी तत्काल लेकर आते थे। आचार्यश्री की आज्ञा का पालन करना ही उनका प्रथम कार्य था। आप संसार की प्रत्येक वस्तु को अनन्त रूप में देखते थे। गाँव का नाम 'अनन्तनगर' हो सागर का अनन्त सागर हो, पाठशाला का नाम अनन्त पाठशाला हो ऐसी आपकी भावना थी जैसे श्रीमान् रामानुज स्वामीके दाशरथी स्वामी थे, वैसे आचार्यश्री के श्रीबद्रीनारायणजी असावा थे। आप बम्बई दिव्यदेश का तीर्थ (जल) साथ में लेकर पुष्कर से खियाला पैदल जाते थे। मार्ग के प्रत्येक कूये तालाब में तीर्थ छाड़कर उसका भगवत् सम्बन्ध कराते थे।

एकवार भगत जी बम्बई रहते समय उत्सव में अपनी धमपत्नी को बम्बई बुलाये। वे लोग सत्संग भवन के कमरे में रहते थे। एक दिन जब भगतजी भगवान् की सवारी में व्यस्त थे, उसी समय कमरे से गहने चोरी हो गये, खबर भगत जी के कनों तक पहुंचो लेकिन भगवान् की सवारी बीच में छोड़कर नहीं आये बाद में उनके छोटे भाई मुनीमजी ने कारवाहीं की वापस वैसे के वैसे मिल गये। भगतजी का समय आचार्य चरणके अनुभव में व्यतीत होता था। आपने बहुमूल्य ग्रन्थों की रचनाय की। आज हम उन से बंचित रह गये। एक वार खियालामें बाढ़ आयी ग्रन्थ जल में लीन होगये। भगजी प्रत्येक स्वांस को व्यर्थ नहीं जाने देते थे, वे जानते थे 'स्वांव-स्वांस में जात है तीन लोक का मोल।' आपकी आचार्यनिष्ठा आसाधरण एवं अनुकरणीय थी। 卐

श्रीनारायणदास राठी पूना, स्मृति—शेष

रचयिता—श्रीरामानन्द तिवारी, आलीराजपुर

कितना पवित्र वंश है राठी, सेवा भक्ति बान्।
हुये राम सुख दास इसी में, कुल के दीप महान्॥
मन्दिर का निर्माण कराकर, जीवन सफल बनाये।
श्री लक्ष्मी नारायण जी का, प्रादुर्भाव कराये॥
मन्दिर में नित दर्शन करने, नर-नारी सब आते हैं।
अहो भाग्य वंशज कुल राठी, सबको लाभ दिलाते हैं॥
राम सुख दास के चार पुत्र थे, जिनमें श्री बद्री भी एक।
इन्हीं के पुत्र नारायण में था, कितना सद्‌गुण भरा अनेक॥
बद्री नारायण पिता श्री थे, सोनू बाई माता।
ऐसा भक्त रत्न वह जन्मा, किया प्रभु से नाता॥
उत्तम कुल सुपुत्र कहलाये, भक्ति रस के ज्ञानी।
आगे अब लिखता हूं उनकी, सद्‌गुण कर्म कहानी॥
कापड़ गंज पूना नगरी में, कहते रविवार जो पेठ।
मानव रत्न एक थे उसमें, राठी श्री नारायण सेठ॥
चलते फिरते खाते पीते, रटते थे हरि नाम।
धर्म शास्त्र की पुस्तक पढ़ना, यही था उनका काम॥
हरि चिन्तन संकीर्तन दोनों, बड़े प्रेम से करते थे।
माया, ममता, मोह नहीं था, ध्यान हरिका धरते थे॥
पांव में उनके बहुत कष्ट था, उसे सहन कर जाते थे।
परन्तु मन्दिर में नित जाना, अपना नियम निभाते थे॥
अन्त काल के दिन भी मन्दिर, जाकर हवन कराये थे।
प्रभु की माया किसको मालुम, नहीं समझ कुछ पाये थे॥
कितने भाग्यवान थे राठी नहीं क्लेश सन्ताप सहे।
स्वामी श्री अनिरुद्धाचारी, अन्त काल में वहीं रहे॥
नहीं किसी से कुछ भी बोले अपनी अन्तिम वाणी।
अब तो केवल याद रहेगी, उनकी मात्र कहानी॥
बहुत दिनों तक किये प्रार्थना, गुरु श्रीअनिरुद्धाचारी से।
स्त्रोत रत्न की टीका करदें, फैले चारों वर्णों में॥
ऐसी सुन्दर हुई है टीका, अर्थ भाव सब नये-नये।
मुद्रण का प्रारम्भ हुआ तो, स्वयं सेठ ही स्वर्ग गये॥
स्त्रोत रत्न को पूर्ण करेगें, उनके सब परिवार।
राठी जी की पुण्य स्मृति में, रहे ग्रन्थ यह सार॥

ग्रन्थ-समीक्षा

श्रीधाम वृन्दावन में 'श्रीराधावल्लभ-सम्प्रदाय' का अपना विशेष महत्व है। अपने अपने भाव-सोध पर आसीन हो जिसने जिस प्रकार से उस परमसत्व-समाश्रय, परतत्व का अनुभव किया, उन्हीं में यह सम्प्रदाय भी अन्यतम है। संप्रदाय शब्द का अर्थ है—'उस परमपुरुष परमात्मा के अनुभव को अपनी शिष्य परम्परा को क्रमशः प्रदान कर सात्विक परिवेश को अग्रसर करना'। इसे अन्यथा नहीं समझना चाहिये। इसी सम्प्रदाय के एक अनूठे ग्रन्थ रत्न '**कर्णानन्दः**' के विषय में यहाँ अनुभव करेंगे।

इस सम्प्रदाय का अपर नाम 'हित' भी है। जीव का परमहित स्वयं को अपने परमाराध्य के चरणों में समर्पित कर देना ही है। इस 'हितधर्म' के प्रवर्तक श्रीमन्महाप्रभु हितहरिवंशचन्द्र जी महाराज थे। इनके पिताश्री व्यास जी महाराज और मातुःश्री ताराराानी ने अपने परमैकान्तिक भक्ति-योग से श्रीराधाकृष्ण युगलोपासना को उपाय और उपेय रूप से अनुभव किया और प्रचारित किया। वृन्दावन में श्रीराधावल्लभ जी का मन्दिर उसका प्रमुख केन्द्र है।

गोस्वामी श्रीहितहरिवंश जी के द्वितीय पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र (कृष्णदास) जी का जन्म सम्वत् १५८७ में हुआ था। वे प्रखर विद्वान् एवं भक्त थे। 'कर्णानन्दः' उन्हीं की सर्वोत्तम संस्कृत पद्यात्मक भावपूर्ण रचना है। अन्तः साक्ष्य से विदित है कि इस ग्रन्थ रचना की संपूर्ति सम्वत् १६३५ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के शुभ दिन में हुई थी। उन्होंने अपनी संस्कृत रचना की 'अर्थकौमुदी' नाम्नी टीका स्वयं लिखी, किन्तु वह अपूर्ण रह गई। आगे चलकर श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद ने उस टीका को पूर्ण किया। 'कर्णानन्दः' के अतिरिक्त इनकी तीन और रचनायें इस प्रकार हैं—राधानुनयविनोदकाव्यम्, उपराधा-सुधानिधि, पदावली। कविता में ये 'कृष्णदास' ही स्वयं को लिखते हैं—'श्रीवृन्दावनकानने तद्रसतृषितमतेः श्रीमतः कृष्णदासात्' इस उक्ति से ज्ञात होता है।

'कर्णानन्दः' ग्रन्थ भावप्रधान मुक्तक गीति काव्य है। इसमें १९३ पद्य हैं। जिनमें १०० आशीर्वादात्मक, ९ पद्य नमस्कारात्मक तथा ८१ वस्तुनिर्देशात्मक हैं। अन्त के तीन पद्यों में रचनाकार ने अपनी आशंसा व्यक्त की है। इस ग्रन्थ में उपास्य युगल को रस स्वरूप अंकित किया है—'रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति, इस उपनिषद् वाक्य का प्रमाण प्रस्तुत किया है। राधा को महनीयता, प्रेमास्पदता एवं रसकी चरमोत्कृष्टभाव-भूमिका के रूप में प्रतिष्ठित कर उसका विविधभावोद्वेलित सरस वर्णन प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में अनेक प्रकार के विलक्षण छन्दों का प्रयोग है। ६५ वें पद्य 'वंदे राधाम्' में एकाक्षर वृत्त श्रीनाम के छन्द का प्रयोग किया गया है। 'कृष्णे भूयात् वह्नी तृष्णा' पद्य में द्वयक्षर वृत्त और स्त्रीछन्द, राधायाः प्राणेशं ध्यायामो निर्बाधम्' में नारी छन्द, इस प्रकार मृगी, कन्या, तरणिजा, पंक्ति, प्रिया, तनुमध्या, शशिवदना, सोमराजी, मधुमती आदिक और भी अनेक छन्दों का प्रयोग इस कृति में उपलब्ध है।

'कर्णानन्दः' इस राधारतिसुखोपेत सरस रचना की हिन्दी-टीका हितधर्म के सरस विद्वान् धर्माचार्य श्रीमान् हितानन्द गोस्वामी जी महाराज ने करके सर्वसाधारण सरस-भावुकों को सुलभ बोधगम्य बना दिया है। डिम्मी १८×२२ साइज, मूलग्रन्थ ११७ पेजों में, सर्वप्रथम प्रभुपाद श्रीकृष्णचन्द्र गोस्वामी का सुन्दर तिरंगाचित्र, २० पेजों में गोस्वामी श्रीहितानन्द जी का 'प्राक्कथन,' श्रीअमीरचन्द्र शास्त्री का 'किञ्चिन्निवेदनम्,' श्रीसत्यव्रत शास्त्री लिखित 'भूमिका' हैं। प्रकाशक श्रीमोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा० लि०, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली--७ हैं। इस ग्रन्थ का मूल्य सजिल्द—१४० रु० तथा अजिल्द ९० रु० है।

श्रीराधा के उपासकों के लिये यह सर्वथा संग्रहणीय, पठनीय, मननीय एवं प्रशंसनीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के कर्ता, भाषान्तरकार एवं प्रस्तोता सभी साधुवादार्ह हैं। इतिशम्।

विनीत--

पं० केशवदेव शास्त्री, वृन्दावन

धर्म और दर्शन का समीक्षण

'धर्म और दर्शन' नामक ग्रन्थ का प्रणयन डॉ० श्रीओम्‌शिवराज जी ने किया है और इसे सन् १९८५ में प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में धर्म, वेदों का स्वरूप और महत्व, धर्म और सम्प्रदाय, धर्म और विश्वज्ञान का स्रोत एक है, वेद विरोध शक्य नहीं है। इतना विषय प्रथम खण्ड के दो अध्यायों में वर्णित है। द्वितीयखण्ड की चार अध्यायों में दर्शन क्या है विकासवाद और दर्शन आस्तिक और नास्तिक, इतिहास, सृष्टि, सूक्ष्म-शरीर, स्थूल-शरीर, नास्तिक विचार आदि का वर्णन है। तृतीय खण्ड की तीन अध्यायों में वेद-प्रमाण, जीवन और जगत की व्याख्या, तीन तत्व, शरीर में आत्मा का निवास-स्थान, मनुष्य का श्रेष्ठतम कर्म अर्थात् धर्मपालन 'वेदप्रमाण सर्वोपरि, जीवन और दर्शन आदि विषय संग्रहीत हैं।

डिम्मी साइज के तथा २५२ पेज के इस ग्रन्थ में लेखक श्रीओम्‌शिवराज जी ने धर्म और समाज के सजग प्रहरी के रूप में सत्य के शाश्वत प्रकाश को जिन अन्वेषकों ने उजागर किया है, उसी पद्धति पर सत्य को प्रस्तुत करने की सफल चेष्टा की है। आज के परिवेश में इस प्रकार के सर्वसंग्रही ग्रन्थ की आवश्यकता इसलिये अधिक है कि पाठक को कम समय में कुछ विशेष जानकारियाँ मिल जायें। प्रतिपाद्य सामग्री बहुमुखी एवं पठनीय है।

ऐसे महत्वपूर्ण विषयों पर लिखने से पूर्व अधिकृत आचार्यों, दार्शनिक विद्वानों एवं उसकी प्रारम्भिक योग्यता के साथ मर्मस्पर्शी ज्ञान अपेक्षित होता है। फिर भी डॉ० ओम्‌शिवराज जी महोदय का प्रयास सर्वथा सराहनीय है। पुस्तक संग्रहणीय है।

पुस्तक प्राप्तिस्थान—डा० ओम्‌शिवराज
एस. बी. ए. कालेज,
मांट [मथुरा] उ०प्र०, पिन--२८१२०२

शुभेच्छुः—
पं० केशवदेव शास्त्री, वृन्दावन

श्रीमद् भगवद्गीता एक योगिकव्याख्या

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के मुखपद्म-विनिसृत 'श्रीमद् भगवद्गीता' नामक वह ज्ञान का भाण्डार है जिसके सुनने मात्र से अर्जुन जैसे अज्ञान के प्रतीक का मोह नष्ट होगया 'नष्टो मोहः' उसे ज्ञानोदय मिला 'स्मृतिर्लब्धा' और कहने लगा 'करिष्ये वचनं तव' भगवन् मैं आपके वचनों का पालन करूँगा।

ऐसी 'श्रीमद्भगवद्गीता' पर सभी आचार्यों ने टीकायें लिखी हैं। अन्य अनेक मनीषियों ने अपनी आत्मतुष्टि हेतु अपनी अपनी कलम उठायी है। ऐसे ही मनीषियों में 'श्रीशैलेन्द्र शर्मा' एक योगी हैं। अपने अल्पायु में इस ब्रह्मविद्या अथवा योगशास्त्र पर जिसमें पुरातन योग साधनायें हैं, जिनका अभ्यास करने से कालस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का साक्षात्कार किया जासकता है की योग सम्बन्धी व्याख्या लिखी है।

आपका परिचय आपके ही शब्दों में - 'श्रीहिम्मत बहादुर शर्मा और श्रीमती ज्ञानीदेवी का सबसे छोटा पुत्र मैं—शैलेन्द्र शर्मा—एक योगी हूँ और बहुतलम्बे समय के बाद विश्व को गीता में वर्णित योगमार्ग का उपदेश देने वाले महान् योगी गुरु "बाबाजी महाराज" उनके शिष्य श्रीश्यामाचरण लाहिड़ी महाशय, उनके पुत्र और शिष्य श्रीतीनकौड़ी लाहिड़ी महाशय, उनके पुत्र और शिष्य श्रीसत्यचरण लाहिड़ी महाशय का मैं शिष्य हूँ।

वैसे यह गीता शास्त्र गूढ़ रहस्यार्थ बोधक शास्त्र है। इसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग और उपासना या भक्तियोग का प्रकृष्टतमरूप वर्णित है। अन्त में 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' के द्वारा सबका समन्वय करते हुये एकमात्र भगवत्—शरणागति की ही श्रेष्ठता दी है, उसीके द्वारा सब पापों से मुक्ति और भगवत्प्राप्ति सुलभ बतायी है।

श्रीशैलेन्द शर्मा ने इस ग्रन्थ की व्याख्या में जो भी व्यक्त किया है वह अपनी गुरुपरम्परा से प्राप्त ज्ञान और उस परातन योगकर्म के अभ्यास के परिणाम को ही 'सत्य के अन्वेषकों को' व्यक्त किया है। इससे स्पष्ट है यह व्याख्या 'स्वान्तः सुखाय' ही है।

डिम्मी साइज १८×२२ के ३११ पेज की यह पुस्तक सुन्दर पेपर, श्रेष्ठ मुद्रण, एवं मखमली सुन्दर मजबूत आवरण ने पुस्तक की शोभा संवर्धित की है। इसमें प्रकाशक श्रीशशिकान्त जी पाठक का योगदान सराहनीय है। आशा करता हूँ कि इस ग्रन्थ का मूल्य २००)रु०—सत्य के अन्वेषकों को अधिक नहीं हो सकेगा।

अन्त में एक निवेदन है कि 'एक योगिक व्याख्या' की जगह 'एक यौगिक व्याख्या' नाम अधिक पा० सम्मत होता। धन्यवाद।

पुस्तक प्राप्तिस्थान—श्रीशैलेन्द्र शर्मा
C/o शर्मा फार्म, बाराघाट इन्डस्ट्रियल ऐरिया
पो०--मोरार, ग्वालियर [म०प्र०]

शुभाशंसकः—
पं० केशवदेव शास्त्री

नोट—मुझे 'कर्णानन्दः' ग्रन्थ श्रीहितानन्द गोस्वामी जी महाराज कृत भाषान्र सहित, 'धर्म और दर्शन' श्रीओम्शिवराज कृत तथा 'श्रीमद्भगवद्गीता की श्रीशैलेन्द्र शर्मा कृत यौगिक व्याख्या' सहित ये ग्रन्थ,—श्रीविनायक-शोध-संस्थान, गोविन्द-घेरा, वृन्दावन के संचालक श्रीनरेशचन्द्र शर्मा से समीक्षण हेतु प्राप्त हुये। उनका अवलोकन कर आपाततः जैसा उपलब्ध हुआ, सो लिखा है। —सम्पादक

समाचारस्तम्भ

श्रीरंगमन्दिर वृन्दावन में अन्नकूट महोत्सव सम्पन्न

श्रीवृन्दावन, श्रीरङ्गमन्दिर में श्रीरामानुजाचार्य स्वामी के अपरावतार श्रीमद् वरवरमुनि स्वामी के उत्सव समापन दिवस मूल नक्षत्र में कार्तिक शुक्ल पंचमी शुक्रवार को श्रीअन्नकूट महोत्सव सम्पन्न हुआ। भगवान् श्रीगोदा रङ्गमन्नार प्रभु गोवर्धन धारण किये त्रिभंगललित छटा से अद्भुत दर्शन दे रहे थे। देवराज इन्द्र ऐरावत से उतरकर प्रभु की शरणागति कर रहा था। ग्वालबाल हाथ जोड़कर मुरलीधारी श्रीकृष्ण की अपूर्व शोभा निहार रहे थे। पार्श्व में श्रीवरवरमुनि स्वामी जी विनीत मुद्रा में बिराजे थे। सामने विविध पक्वान्न एवं अन्न की राशि विभिन्न व्यंजनों के साथ प्रभु को भोगार्थ अर्पित थी।

यह दर्शन तीन घंटे तक भक्तों के लिये सुलभ रहे। बाद में अन्न की राशि को कदम्ब रूप में परिणत कर भक्तों को बाँट दिया गया। हजारों भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया।

यही क्रम अन्य देवालयों में हुआ—प्रतिपदा से उक्त पंचमी तक श्रीहरिदेवमन्दिर, श्री तोताद्रिमठ, श्रीवानमामलैमठ, श्रीहयग्रीवखटला, श्रीगोपाल जी का मन्दिर पूर्वद्वार, श्रीधाम गोदा-विहार मन्दिर, श्रीसवामन सालिग्राम मन्दिर, श्रीभागवत आश्रम, श्रीरामबाग, श्रीअनन्ताचार्य जी गोविन्द-कुण्ड आश्रम आदि में सभी जगह अन्नकूट महोत्सव मनाया गया और भागवत सेवा हुई।

दिनाङ्क ६ नवम्बर ९२ शुक्रवार से पूज्यपाद श्रीरंगदेशिक स्वामी जी महाराज का दस दिव-सीय महोत्सव श्रीरङ्गमन्दिर में प्रतिवर्ष की भाँति मनाया गया।

श्रीरणछोड़राय जी की प्रतिष्ठा सानन्द सम्पन्न

आदि तीर्थ श्रीपुष्करराज सर्वतीर्थगुरु ब्रह्मपुष्कर श्रीअष्टभूवैकुण्ठ आश्रम में भगवान् श्रीरण-छोड़राय जी की प्रतिष्ठा का कार्यक्रम दिनांक ३-११-९२ से १०-११-९२ तक श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ के साथ भव्यरूप से सम्पन्न हुआ। व्यासपीठ पर वेदान्ताचार्य स्वामी श्रीरामचन्द्राचार्य, वेहटाजंगल, शाहजहाँपुर ने आसीन होकर श्रीशुकदेव जी महाराज की वाणी का रसास्वादन कराया।

भगवत्प्रतिष्ठा का क्रम सुयोग्य विद्वान् श्रीवैष्णवभूदेवों द्वारा तथा यज्ञ का कार्य अपने सहयोगियों के साथ श्रीमाधवाचार्य ने सम्पन्न कराया। यह आयोजन महन्त श्रीस्वामी पुरुषोत्तमाचार्य जी महाराज, श्रीअष्टभूवैकुण्ठ आश्रम पुष्कर के तत्वावधान तथा निर्देशन में सम्पन्न हुआ।

इस महोत्सव में पधारने वाले श्रीमहन्त स्वामी भागवताचार्य जी उज्जैन और भी डभोई, अहमदाबाद, वृन्दावन, अयोध्या आदि स्थानों से महानुभावों ने पधार शोभा की अभिवृद्धि की। उत्सव की कार्य व्यवस्था में उदयपुर से डा० जसवन्तसिंह झाला, बड़ी सादडी से श्रीनीलकण्ठ जी शर्मा, पं० तेजशंकर हीरालाल जी सुनावा, तुलसीराम जी प्रजापति, रतनलाल जी प्रजापति आदि

ने उल्लेखनीय श्रम किया। मुख्य यजमान श्रीरामनिवास जी सोनी सिकन्दराबाद ने अपने परिवार सहित आकर इस महोत्सव का तन मन धन से लाभ लिया। पूजारी जी श्रीकमलनयनाचार्य, श्रीरघवीर जी, श्रीप्रभुदयाल, श्रीनर्मदाशंकर जी सपत्नीक, श्रीवंशीलाल जी आदि ने पूर्णश्रम के साथ सत्सव सफल बनाया।

श्रीरामलक्ष्मणाचार्य, लक्ष्मीनारायण मन्दिर, अहमदावाद

श्रीलक्ष्मीनारायण महायज्ञ बड़ोदरा में सम्पन्न

गिरिराज सोसाइटी मैदान बड़ोदरा (गुजरात) स्थल में श्रीलक्ष्मीनारायण महायज्ञ एवं श्रीमद् भागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ का विशाल आयोजन दि० १-११-९२ से ९-११-९२ तक विविध धार्मिक आयोजनों के साथ श्रीभरतदास जी आचार्यश्री के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ।

व्यासपीठ पर श्रीयोगेन्द्र भट्ट श्रीभागवताचार्य शास्त्री, यज्ञ उद्घाटक श्रीपरमहंस श्रीकृष्ण प्रियाचार्य जी, यज्ञाचार्य– पं० श्रीबालकृष्ण शास्त्री (राज०) यजमान श्रीराजेशरमणभाई पटेल सपत्नीक आदि ने महोत्सव को अपना योगदान दिया। पूर्णाहुति एवं तदीयाराधन दि० ९-११-९२ को सम्पन्न हुआ।

प्रेषक—अशोकभाई ठक्कर
मन्त्री—यज्ञ समिति, बड़ोदरा

आरा में श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञान यज्ञ सम्पन्न

ज० गु० रा० त्रिदण्डी स्वामी श्रीदेवनारायणाचार्य जी महाराज अध्यक्ष श्रीहरिदेव मन्दिर वृन्दावन के व्यासत्व में राजेन्द्रनगर, आरा, बिहार में दिनांक १६-१०-९२ से २३-१०-९२ तक श्रीमद् भागवत जी का दिव्य रसामृत वितरण किया गया।

उक्त आयोजन पूज्य श्रीस्वामी जी महाराज के कृपापात्र स्व० दयाशंकर प्रसाद के सुपुत्र श्रीबलदेव नारायण जी द्वारा बड़े ही श्रद्धा एवं वैभव के साथ सम्पन्न कराया। अन्तिम दिन यज्ञ की पूर्णाहुति एवं विशेष ब्राह्मण सन्त-सेवा की गयी।

पूज्य स्वामी जी महाराज का निवास नारायण कुटी आरा में रहा। अन्नकूट के अवसर पर श्रीव्रजकुमार नारायण जी द्वारा भगवान का विशेष भोग लगाया गया और भक्तों को प्रसाद वितरित किया गया। ज० गु० स्वामी जी महाराज वर्तमान में जयपुर नगर में श्रीमद् भागवत प्रवचन कर रहे हैं।

प्रेषक– बी. के. नारायण, आरा

श्रीवैकुण्ठोत्सव सम्पन्न

केशीघाट, वृन्दावन स्थित श्रीजानकीवल्लभलाल भगवान श्रीवेदान्तदेशिक आश्रम, भगवत्-सन्निधि में और श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्रीमद् भगवानदासाचार्य जी महाराज के तत्वावधान में आपके शिष्य श्रीकृष्ण रामानुजदास सपत्नीक ने अपनी मातु:श्री का त्रिदिवसीय श्रीवैकुण्ठोत्सव दि० २५-२६-२७ अक्टूबर १९९२ को विधिविधान से मनाया। जिसमें श्रीविष्णुपुराण, श्रीमद् भागवत, श्रीभाष्य, श्रीमद् भगवद्गीता, अर्चिरादिमार्ग आदि के साथ स्तोत्र पाठ २१ वैष्णवों के द्वारा प्रात: सायं होता। अन्तिम दिन तदीयाराधन संभावना की गई। कार्य संचालन डा० गिरिराज शास्त्री महाभाग ने किया। श्रीकृष्ण रामानुजदास की श्रद्धा एवं आचार्यनिष्ठा दर्शनीय थी।

—सम्पादक

बड़ौदा में धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न

बड़ोदा ८ सेवकनगर रेसकार्स सर्किल सोमानीभवन में भगवदाराधनात्मक विशेष धार्मिकअनुष्ठान पूज्यपाद श्रीस्वामी अनिरुद्धाचार्य जी महाराज की सन्निधि में एवं पण्डित श्रीमदनमोहनाचार्य जी भगवताचार्य के आचार्यत्व में सविधि शान्ति के साथ ३०-१०-९२ से ५-११-९२ तक सम्पन्न हुआ।

इस अनुष्ठान का अवभृथस्नान परम पावनस्रोतस्विनी नर्मदा में देवोत्थान एकादशी के दिन चांदोद में हुआ। यहाँ श्री वत्स मठ में भगवान् की पूजा अर्चना के उपरान्त फलाहार ग्रहण कर प्रस्थान कर अपने निजी यानों से डाकोर पहुंचे, वहाँ श्रीरणछोड़राय भगवान की दिव्य सन्निधि में देवोत्थान एकादशी के पावन अबसर पर५-६ जगह श्रीतुलसीजीका विवाह नारायण केसाथ सम्पन्नहो रहा था। दर्शनों में विलम्ब होने से श्रीरामानुज कोट गये। वहाँ श्रीमहन्तजी व अधिकारी स्वामी से भेंट की। यह बहुत बड़ा स्थान है। यहां लगभग एक सौ माताये सामूहिक भजन संकीर्तन में संलग्न थी।

सायं ७बजे भगवान् श्रीरणछोर लाल के दिव्य दर्शनों का लाभ प्राप्त किया। दर्शनार्चनाप्रसाद ग्रहण के उपरान्त डाकोरसे बडौदा रात्रि९बजे आकर पहुंचे। यह सब अनुष्ठान श्रीगेंदालाल पन्नालाल सोमानी बड़ोदा ने अत्यन्त श्रद्धा एवं विश्वस्त धारणाके साथ कराया। सामानीजी का समस्तपरिवार बन्धु बान्धव इस कार्यक्रम में पूर्ण आनन्द लेरहे थे। आयोजन सुन्दर रहा।

प्र०—श्रीमोहनलाल ओझा, उदयपुर

हाड़ा कुटीर में श्री बाबा रामसुखदास जी का प्रवचन

वृन्दावन, हाड़ाकुटीर में श्रीमद् भगवद् गीता के मार्मिक विद्वान् सन्त श्री बाबा रामसुख दासजी का श्रीगीताजी के माध्यम से धार्मिक प्रवचन उद्योगपतिश्री श्रीनिवास जी हांडा, कलकत्ता के विनीत आग्रह पर श्रीरामजिबाई सत्संगभवन में दि. २५ अक्टूबर से२१ नवम्बर१९९२ तक प्रातः ५ से ६ और सायं ३ से ४ बजे तक हुआ। २२-११ से २८-११ तक हाड़ा कुटीर में हो रहा है। बाहर से पधारे तथा स्थानीय हजारों भक्त प्रवचन का लाभ प्राप्त कर रहे हैं। आयु, विद्वत्ता एवं सन्त रहनि से श्रीबाबा रामसुखदास जी युगपुरुष या महापुरुष मनीषी हैं।

बाबाजी दि० १-१२-९२ से कलकत्ता में प्रवचन करेंगे वहाँ का स्थान समय पेपरों में आजायेग।

—सम्पादक

विद्वद् गोष्ठी-सम्पन्न

वृन्दावन, रमणरेती 'धानुका कोठी' में एक विद्वद् गोष्ठी का आयोजन दि० २४-११-९२ मंगलवार को धर्मनिष्ठ गोलोकवासी श्रीराधाकृष्ण धानुका जी के जन्मशताब्दी पर्व के उपलक्ष्य में उनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमलाल धानुका ने किया। जिसमें अनेक स्वरूपनिष्ठ भूदेवों का श्रद्धा पूर्वक समर्चन कर आशीर्वाद प्राप्त किया ऐसा आयोजन वे अपने पिताश्री की तृप्ति के लिये प्रायः प्रतिवर्ष किया करते हैं। सभा संचालन श्रीठाकुरजी भागवताचार्य ने किया।

श्रीसन्त के. पी. रामानुजम् का मंगल-महोत्सव

गोवर्धन, सन्तनिवास श्रीवैष्णव-आश्रम के संस्थापक सन्त के० पी० रामानुजम् का मंगल महोत्सव भगवद्-भागवत आराधना के साथ दि०११-११-९२ को मनाया गया श्रीसन्तजी ८१ वर्ष के पूर्ण होकर ८२ वें वर्ष में पधारें हैं।
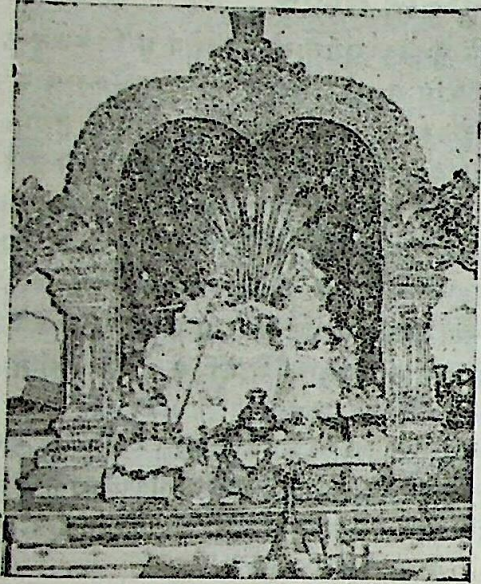
भागलपुर के श्री स्वामी राघवाचार्य जी महाराज का वैकुण्ठवास

भागलपुर दिव्यदेश में विराजमान भगवान् श्री राधारमण देव जी का मंगल विग्रह।

श्रीराधारमण कुंज भवन दिव्यदेश, रामेश्वर नारायण अग्रवाल रोड़ भागलपुर के पीठाधीश्वर विद्वद्वरेण्य अनन्तश्री विभूषित सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न, शास्त्रार्थ महारथी श्रीस्वामी राघवाचार्य जी महाराज का दि०२१-७-९२ श्रावण कृष्ण षष्ठी को वैकुण्ठ वास हो गया। आपके पिता पं० प्रेम लाल पाण्डेय एक आदर्श शिक्षक थे। तथा आपकी जन्म भूमि भागलपुर प्रमण्डलान्तर्गत जमीन फुलवारिया है। उस क्षेत्र के वैष्णवों में आप अग्रगण्य थे। आप अपने गुरुदेव श्रीस्वामी रामप्रपन्नाचार्य (मद्रासी स्वामी) के साथ रहकर धर्म प्रचार, सभा शास्त्रार्थादि कार्यों में सिद्धहस्त हो गये थे। सन् १९ ३२ में भागलपुर में ही काशी तथा मिथिला से आये महान् विद्वानों को जो वैष्णव धर्म के विरोधी थे, को मुहतोड़ जबाब देकर वैष्णव धर्म की ध्वजा फहरायी थी। आपने देश के स्वतंत्रता संग्राम में गरमदल वीर-सावरकर, डॉ श्यामाप्रसादमुखर्जी आदिके साथ रहकर सक्रिय भूमिका निभाई प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी प्रभृति के साथ अखिलभारतीय हिन्दू महासभा के जनरल सेक्रेटरी के रूप में केरल जेल गये। तत्पश्चात अपने गुरुदेव मद्रासी स्वामी द्वारा स्थापित मन्दिर का कार्य भार २१ नवम्बर १९८१ से संभाला। इस अल्प समय के दौरान अनेकों शिष्यों को व्याकरण, न्याय ज्योतिष वेदन्त की उच्चतम शिक्षा प्रदानकी। प०अनन्ताचार्य को आचार्य एम. ए. तथा पी. एच. डी. की शिक्षा देकर अपने जीवन काल में उत्तराधिकारी नियुक्त किया, तथा
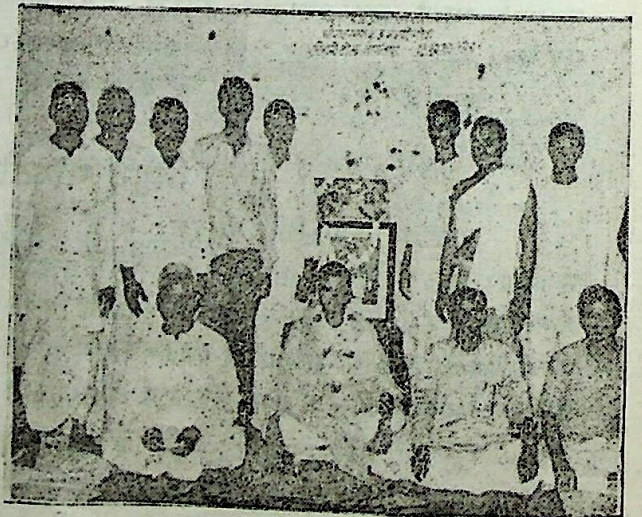
दिव्य देश के महन्त श्री अनन्ताचार्य जी भक्त मण्डल के साथ अचार्य सन्निधि में

कार्यदक्षता देखकर और संतुष्ट होकर श्रीमन्नारायण प्रभु के नित्य कैंकर्य में लीन हो गये। सम्प्रति स्वामी अनन्ताचार्य बड़ी दक्षता के साथ पूजा पाठ उत्सव अथिति—साधु सेवा छात्रों को अध्यापनादि समस्तकार्य सम्पन्न कर रहे हैं।

प्रे०—आचार्य आमोद झा शास्त्री, राधारमण मन्दिर, भागलपुर

मेड़ता में श्रीलक्ष्मी नारायण महायज्ञ सम्पन्न

भक्तिमती श्रीमीराबाई के प्राकटयस्थल मेड़ता में नवकुण्डीय श्रीलक्ष्मीनारायण महायज्ञ जोकि यज्ञ-प्रेरक स्वामी श्रीकान्ताचार्यजी महाराज उज्जैनका ३४ वाँ यज्ञ मनाया गया, इन्हीं श्रीस्वामीजी के तत्वावधान में तथा चारभुजानाथ के सान्निध्य में दि० २६-१०-६२ गुरुवार से ३-११- मंगलवार तक विश्व कल्याण की भावना से अन्य विविध धार्मिक कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुआ।

इस महायज्ञ के संयोजक श्री केवलचन्द्र अग्रवाल, मुन्नीराम प्रसाद पारीक तथा अध्यक्ष श्री निवास गट्टानी थे। अन्तिम दिन अवभृथ स्नान एवं प्रसाद वितरण किया गया। ❖

खग्रास चन्द्र ग्रहण (६-१० दिसम्बर १९९२) को

यह ग्रहण मार्ग शीर्ष पूर्णिमा बुधवार को ९-१० दिसम्बर १९९२ ई. की मध्यगत रात्रि में भारत के सभी प्रान्तों में दिखाई देगा।

ग्रहण प्रारम्भ आदि का काल (भा. स्टै. टा.)—

ग्रहण प्रारम्भ मध्यरात्रि ३ बजकर २९ मि. पर ग्रहण मध्य ५ बजकर १४ मि. पर

ग्रहण समाप्त प्रातः ६ बजकर ५८ मि. पर ग्रहण पर्वकाल ३ घंटा ३० मि.

ग्रहण का सूतक—इस ग्रहण का सूतक ६ दिसम्बर को सायं ६ बजकर २९ पर शुरू हो जायेगा।

भारत में इस ग्रहण की सामाप्ति १० दिसम्बर ९२ को सूर्योदय के आस पास हो रही है, अतः भारत के अनेक स्थलों पर चन्द्रमा ग्रस्त ही अस्त हो जाएगा, क्योंकि पूर्णिमा के दिन, विशेषकर चन्द्र ग्रहण वाले दिन, सर्वत्र चन्द्रास्त और सूर्योदय में बहुत कम अन्तर होता है। दिल्ली, हरियाणा पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, सौरष्ट्र व राजस्थान में यह ग्रहण ग्रस्तास्त नहीं होगा।

ग्रहण का राशिफल—यह ग्रहण मृगशिरा नक्षत्र और वृष राशि में हो रहा है, अतः इस का सबसे अधिक कुप्रभाव मृगशिरा नक्षत्र और वृष राशि वालों पर पड़ेगा।

यह ग्रहण— कर्क, सिंह, धनु, मीन राशी को लाभ दायक है। शेष के लिये कष्ट प्रद अतः ग्रहणकालके समय भगवद् भजन, पुण्य नदी स्नान, दान आदि करने से कष्ट,निवारण का विधान है।

सूर्य-ग्रहण

यह ग्रहण अमावास्या बुधबार दि० २३-२४ दिसम्बर को रात्रि में प्रातः ३-५१ बजे लगेगा और मोक्ष प्रदि पतिपद को प्रातः ८-११ बजे होगा। भारत में यह प्रतिपद को प्रातः दिखाई देगा। इस काल में भगवन्नामसंकीर्तन करना आवश्यक हैं। सोना, भोजन, चायपीना, कुचेष्टायें वर्जित हैं।

द्वारा—नरेशचन्द्र शर्मा

अध्यक्ष—श्रीविनायक सेवासमिति (रजि०) १२२ गोविन्द घेरा, वृन्दावन (उ० प्र०)

श्रीवैकुण्ठ एकादशी महोत्सव, श्रीरङ्गम्

दक्षिण भारत, द्रविडदेश उभय कावेरी के मध्य विराजमान श्रीअष्टभूवैकुण्ठधामों में प्रथम श्रीरङ्गनाथ भगवान् श्रीरङ्गम् हैं—'आद्यं प्रोक्तं स्वयं व्यक्तं विमानं रङ्गसंज्ञकम्'।

उक्त महोत्सव में प्रतिदिन एक एक अलंकार की सेवा प्राचीनकाल से राजाओं द्वारा समर्पित आभूषणो से २२ दिन तक भिन्न भिन्न प्रकार के शृङ्गारों से श्रीरङ्गनाथ भगवान् की होती चली आरही है। जिसमें मोहिनी अलंकार, रत्न-कवच, मोतीजामा आदि के दिव्य दर्शन हैं। भगवान् की सवारी १० दिन तक अर्जुन-मण्डप में विराजते है। ११-वें दिन वैकुण्ठ-एकादशी के प्रातः भगवान् वैकुण्ठ द्वार से पधारकर मणिमण्डप (सहस्र खम्भावाले मण्डप) में १० दिन तक पधारते हैं। यहीं पर श्रीशठ-कोप स्वामी के परमपद की लीला का प्रदर्शन कराया जाता है। यह उत्सव दर्शनीय है।

इस महोत्सव में उत्तरदेशीय महात्मा भक्तगण पधारते हैं, उनके लिये एक मास तक आवास प्रसाद आदि की व्यवस्था रहती है, परन्तु यह सब सेवा का भार आप लोगों पर ही है। आप सब इष्ट मित्रों सहित पधार कर दर्शनों का तथा धर्म का लाभ प्राप्त करें।

आपका श्रीरामचन्द्र स्वामी २३४, दक्षिण उत्तरा स्ट्रीट, जिला–तिरुच्ची (तमिलनाडु) पिन--६२०००६

काका जी नहीं रहे

परमवैष्णव, गुरुनिष्ठ, सन्त ब्राह्मण सेवा-परायण वै० वा० श्रीलक्ष्मीनारायण असावा खियाला, राजस्थान के कनिष्ठ पुत्र जवहीदास जी असावा का ५८ वर्ष की आयु में वैकुण्ठवास हो गया। उन्हें खियाला निवासी काका जी कहते थे। वे अपने पिताश्री के समान 'सियाराममय सब जग जानी' सिद्धान्त के थे। आपकी बड़ी बहिन कुन्तीबाईजी सन्त-सेवा-परायण भगवन्निष्ठ महिला थी।

ऐसी दिव्यात्मा के प्रति हमारी हार्दिक मंगल कामना है।

प्रेषक—श्रीगोपाल जोशी, खियाला

राजाका रामपुर में वैकुण्ठोत्सव सम्पन्न

राजाका रामपुर स्थित श्रीवेंकटेश मन्दिर रामानुजकोट के प्रमुख ट्रस्टी श्रीदामोदर दास जी का दि० २७-८-९२ को प्रातः ९ बजे परमपद होगया। आपने एक चिकित्सालय निर्माणकर धर्मार्थ चिकित्सालय के रूप में शासन को सौंप दिया। आपके पुत्र गोपीनाथ अपने पिता की कीर्तिसंरक्षण में तत्पर है। श्रीदामोदर दास जी का वैकुण्ठोत्सव श्रीरामप्रपन्न शास्त्री नैमिषारण्य के आचार्यत्व में दि० १०-९-९२ से १४-९-९२ तक सविधि सम्पन्न हुआ। इसमें स्वामी श्रीगोविन्दनारायण जी कानपुर, स्वामी श्रीहरिप्रपन्नाचार्य जी बदायूं वालों ने पधार कर समस्त परिवार को आशीर्वाद दिया।

प्रेषक - गोपीनन्दकुमार गुप्त आदि

सन्तश्री स्वामी रामसरोवरदास जी की गोवर्धन आराधना

श्रीराधामाधव कुंज, परिक्रमा मार्ग, रमणरेती, वृन्दावन के संस्थापक सन्तश्री रामसरोवरदासजी श्रीवैष्णव आजकल गिरि गोवर्धन भगवान की सातकोश की १०८ परिक्रमा में संलग्न हैं। प्रतिदिन दो परिक्रमा लगाते हैं। सन्तनिवास में विश्राम करते हैं। भगवान् उनके संकल्प को पूर्ण करें -नरेश

श्रीश्री १००८ श्रीस्वामी वैकुण्ठाचार्यजी महाराज का वैकुण्ठवास
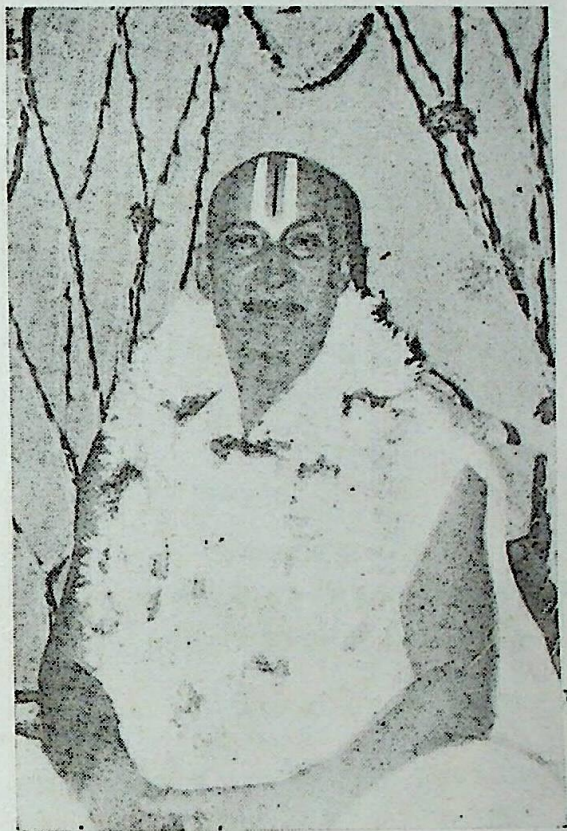
अयोध्या निवासी स्वामीजी श्रीसीतारामाचार्यजी के परम कृपापात्र एवं श्रीरामानुज स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत दर्शन के प्रसारक व प्रचारक एवं न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान रघुनाथपुर (विहार) निवासी स्वामीजी श्रीवैकुण्ठाचार्यजी महाराज का ८५ वर्ष की आयु में लम्वी बीमारी के बाद भगवद् अनुभव करते हुए कार्तिक पूर्णिमा दिनांक १०-११-९२ को कलकत्ता में वैकुण्ठवास हो गया। अन्तिम संस्कार में भारत के सुदूर प्रान्तों के विभिन्न स्थानों से आगत हजारों शिष्यों ने भाग लिया। पिपरिया में यह दुखद समाचार प्राप्त होते ही शोक की लहर छा गई। यहाँ के श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के सभी अनुयायियों ने सम्पूर्ण दिन अपने प्रतिष्ठान बन्द रखे और अपरान्ह में स्थानीय श्री रामानुज सत्संग भवन में नेपाल से पधारे श्रीस्वामीजी हरिप्रपन्नाचार्यजी महाराज के सान्निध्य में सामूहिक रूप से उनके उपकारों को स्मरण करते हुए शोकाकुल हृदय व सजल नेत्रों से भजन कीर्तन स्तोत्र पाठ के साथ वैकुण्ठवासी स्वामीजी के चरणों में नतमस्तक हो अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये।

पिपरिया
१३-११-९२

शोक सन्तप्त
समस्त पिपरिया शिष्य मण्डल

प्रेषक— रामगोपाल कावरा, कावरा भवन, पिपरिया (म०प्र०)

एक विशिष्ट धर्माचार्य का परमपद

अनन्तश्री विभूषित, विशिष्ट धर्माचार्य श्रीस्वामी वैकुण्ठाचार्य जी महाराज श्रीरामानुज सम्प्रदाय के स्वरूपनिष्ठ महाभागवत थे। आप भगवत्साक्षात्कार प्राप्त श्रीस्वामी सीतारामाचार्य जी महाराज (अयोध्या वैकुण्ठ मण्डप) के कृपापात्र प्रधान शिष्य थे। आपने अपने जीवन के ८५ वर्ष पूर्ण कर कार्तिक पूर्णिमा दि० १०-११-९२ को ऐहिक लीला संवरण कर परमपद में भगवान् श्रीवैकुण्ठनाथ के दिव्य कैंकर्य हेतु पदार्पण किया।

ऐसे अवसर पर अनन्त-सन्देश परिवार अपने दिव्य धर्माचार्य के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर परमात्मा श्रीमन्नारायण से प्रार्थना है कि वे आचार्यश्री के शिष्यों सम्प्रदाय निष्ठ भागवतों को धैर्यावलम्ब प्रदान करें।

—सम्पादक

Reg. No. M. T. R 200

अनन्त-सन्देश के उद्देश्य

सर्वसाधारण भगवत्प्रेमानुरागियों को प्रभु प्रेम-रस मृतपान कराकर मानव समाज को पूर्ण सुख शान्ति प्रदान करते हुए ईश्वरोन्मुख होने में उत्पन्न भ्रम, विवाद एवं परस्पर द्वेष को समूल नष्ट करना और भगवत्प्रेम के दिव्य आदेश को उपस्थित करना साथ ही पूज्य श्रीकांची प्र० भ० अनन्त श्रीविभूषित श्रीस्वामी अनन्ताचार्यजी महाराज के सदुपदेशों का प्रचार-प्रसार व श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की वृद्धि इस मासिक-पत्र का उद्देश्य है।

नियम

यह पत्र शुद्ध पारमार्थिक पथ का पथिक है।

व्यवस्था सम्बन्धी

१—पत्र प्रत्येक माह की २७ तारीख को प्रकाशित होगा। किसी कारणवश देर भीहो सकती है।

२—इस पत्र की वार्षिक भेंट देश में २० रु० होगी

३—जो सज्जन इसको एक समय में २०१रु०] भेंट प्रदान करेंगे वे पत्र के आजीवन सदस्य होंगे, यह पत्र उन्हें आजीवन मिलता रहेगा।

४—जो सज्जन मास की ५ तारीख तक पत्र प्राप्त न कर सकें, उन्हें कार्यालय को पत्र लिखकर कारण जान लेना चाहिये यदि अंक नहीं भेजा गया होगा तो भेजा जायेगा। यदि भेज दिया गया है तो उसकी जानकारी दी जायेगी।

५—व्यवस्था सम्बन्धी सभी पत्र-व्यवहार नीचेलिखे पते पर करना चाहिए।

सम्पादक सम्बन्धी

१—इस पत्र में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान, भक्ति प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख एवं कवितायें ही प्रकाशित हो सकेंगी।

२—लेख स्पष्टतया कागज के एक ओर लिखकर भेजना चाहिए।

३—लेखों के घटाने-बढ़ाने, छापने न छापने आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक को होगा।

४—लेख, कविता तथा सम्बन्धित-पत्र सम्पादक अनन्त-सन्देश, वृन्दावन, उ० प्र० के पते पर भेजना चाहिए जो माह की १० तारीख तक मिल सकें।

५—विवादास्पद एवं अधूरे लेख स्वीकृत न होंगे,

६—किसी लेखक के मत के उत्तरदायी सम्पादक नहीं होंगे।

७—सम्पादक सम्बन्धी समस्त लिखा-पढ़ी इस पते पर करनी चाहिए।

—पत्र व्यवहार के पते—

व्यवस्थापक—
श्रीवेंकुटेश देवस्थान
८०/८४ फणसवाड़ी, बम्बई—२

सम्पादक—
श्रीरङ्गनाथ प्रेस
वृन्दावन–२८११२१ (मथुरा) उ० प्र०

इस पत्र के व्यवस्थापक एवं मालिक श्रीवेंकुटेश देवस्थान ८०/८४ फणसवाड़ी, बम्बई–२ ने सम्पादक पं० श्रीवेंकटेश शास्त्री द्वारा श्रीरंगनाथ प्रेस, रंगजी परिक्रमा रास्ता, वृन्दावनमें छपवाकर प्रकाशित किया।